卐 नमो वेदान्तवेद्याय रघूत्तमाय 卐

अथ भगवद्रामानन्दाचार्यप्रणीतानन्दभाष्योपेता

# मुण्डकोपनिषत्

यद्द्व्यक्षरमभिधानं विगतक्रममपि जपन् व्याधः ।
कविपुङ्गवपदमागाद् रामाख्यं तद् भजे ब्रह्म ॥१॥
आराध्यं ब्रह्मरुद्रादेर्जगद्धेतुं च मुक्तिदम् ।
दिव्यदेहं गुणाम्भोधिं रामं ब्रह्म समाश्रये ॥२॥
सूत्रवृत्तिकृतौ नत्त्वा व्यासबोधायनौ मुनी ।
श्रीमन्तं राघवानन्दाचार्यं गुरुं नमाम्यहम् ॥३॥
कुर्वे गुरुं नमस्कृत्य ज्ञानभक्तिदयानिधिम् ।
प्रश्नोपनिषदो रम्यं भाष्यमानन्दसंज्ञकम् ॥४॥

卐 श्रीरामाय नमः 卐

श्रीहनुमते नमः

प्रस्थानत्रयानन्दभाष्यकाराय नमोनमः

आनन्दभाष्यसिंहासनासीन

जगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्यश्रीरामेश्वरानन्दाचार्य

प्रणीत प्रकाश

**सीतारामसमारम्भां शुकबोधायनान्विताम् ।**

**रामानन्दार्यमध्यस्थां वन्दे गुरुपरम्पराम् ॥**

जिस दो अक्षर वाला '**राम**' इस नाम का विपरीत क्रम से भक्तिपूर्वक जपने वाला व्याध ने भी कवियों में अद्वितीय स्थान को प्राप्त किया । (प्रथम कवि ने वेद का त्रिष्टुप् जगत्यादि छन्दों में निर्माण किया द्वितीय कवि महर्षि श्रीवाल्मीकिजी जिह्नोंने '**वेद वेद्ये परे पुंसि जाते दशरथात्मजे । वेदः प्राचेतसादासीत्साक्षाद्रामायणात्मना**' इस आगमवचनानुसार महर्षि श्रीवाल्मीकिजी से सम्पूर्ण वेद श्रीमद्रामायण के रूपमें अवतरित हुये जिसका प्रथम श्लोक है-'**तपः स्वाध्यायनिरतं तपस्वि वाग्विदां वरम् । नारदं परिपप्रच्छवाल्मीकिर्मुनिपुङ्गवम् ॥** इत्यादि लौलिक छन्दों में श्रीरामजी के आख्यान को उपनिवद्ध किया । तृतीय कवि श्रीसम्प्रदाय के ७वें आचार्य श्रीव्यासजी हुए जिह्नोंने वेदार्थ का पुराण रूपमें परिणत करके पुराण राशि को बनाया । यहां मङ्गलकर्ता आचार्यजी ने कविपुङ्गव पद का प्रयोग करके श्रीमद्रामायण कारक ऋषि की तरफ में निर्देश किया ।) एतादृश श्रीराम नामक परब्रह्म को नमस्कार करता हूँ ॥१॥

ब्रह्मा रुद्रादि से आराध्य जगत् का अभिन्न निमित्तोपादानकारण तथा मोक्ष को देनेवाले दिव्य अप्राकृतिक

देह विशिष्ट अनन्त कल्याण गुणाकर भगवान् श्रीरामात्मक ब्रह्म का मैं आश्रय लेता हूँ। अर्थात् भक्ति प्रपत्ति द्वारा सर्वेश्वर श्रीरामजी की शरण लेता हूँ ॥२॥

मुनि श्रीव्यासजी तथा महर्षि श्रीबोधायनजी जो कि ब्रह्मसूत्र तथा उसकी वृत्ति के निर्माता हैं उन दोनों को नमस्कार करके तदनन्तर श्रीमान् रावानन्दाचार्यजी गुरु महाराज को नमस्कार करता हूँ।

**'यस्य देवे पराभक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ ।**
**तस्यैते कथिताह्यर्था: प्रकाशन्ते महात्मनः ॥'**

एतादृश नियमानुसार परब्रह्म के नमस्कार के अनन्तर गुरु नमस्कार को अति आवश्यक समझ करके गुरुजी को नमस्कार किया गया ॥३॥

ज्ञान भक्ति और दया के निधि समुद्र सदृश गुरुजी को नमस्कार करके मुण्डकोपनिषत् का मनोज्ञ अर्थात् ललित पद विन्यास जिसमें हो तथा गम्भीर आशय वाला आनन्द नामक भाष्य को लिखता हूँ ॥४॥

**卐 अथ प्रथममुण्डके प्रथमः खण्डः 卐**

**ओं ब्रह्मा देवानां प्रथमः सम्बभूव । विश्वस्य कर्ता भुवनस्य गोप्ता । स ब्रह्मविद्यां सर्वविद्याप्रतिष्ठामथर्वाय ज्येष्ठपुत्राय प्राह ॥१॥**

卐 सर्वेश्वर श्रीसीतारामाभ्यां नमः 卐

आनन्दभाष्यकाराय नमोनमः

आनन्दभाष्यसिंहासनासीन

जगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्यश्रीरामेश्वरानन्दाचार्यजीप्रणीता

卐 लघुदीपिका 卐

सीतारामसमारम्भां रामानन्दार्यमध्यमाम् ।
रामप्रपन्नगुर्वन्तां वन्दे गुरुपरम्पराम् ॥

विश्व का कर्त्ता एवं भुवन का गोप्ता इन्द्र प्रभृति देवों से प्रथम ब्रह्मा उत्पन्न हुये ब्रह्माजी ने ज्येष्ठ पुत्र अथर्व के हेतु सभी विद्याओं में श्रेष्ठ ब्रह्म विद्या का उपदेश दिया ॥११॥

विद्यासम्प्रदायप्रवर्तकपुरुषपरम्परागर्भामाख्यायिकां प्ररोचनाद्वारा श्रोतुर्विद्यायां सादरप्रवृत्त्यर्थामभिधत्ते- ब्रह्मा हिरण्यगर्भः । देवानां सुराणामिन्द्रमरुदग्निप्रभृती नाम् । प्रथमः पूर्वमग्र इति यावत् । यद्वा प्रथमोधर्म ज्ञानैश्वर्यादिभिर्गुणैः श्रेष्ठः । संबभूव समुत्पन्नः । स कीदृश इत्यत्राह-विश्वस्य सर्वस्य भुवनस्य जगतः कर्ता उत्पादयिता, उत्पादितस्यचास्य सर्वस्य जगतो गोप्ता परिपालकः । विद्याप्रवर्तकेषु प्रथमतया कथितस्य ब्रह्मणो विशेषणमिदं सर्वजगत्कर्तृत्वपालकत्वस्वरूपं विद्यायां गौरवाधानार्थम् । प्रख्यातमहिमपुरुषप्रवर्तितविद्यायां गौरवेणादरः स्वाभाविको भवतु श्रोतृणामिति । स पूर्वोक्तमाहात्म्यो ब्रह्मा । ब्रह्मविद्यां ब्रह्मणः

सर्वभूतयोनेः परमात्मनो विद्याम् । तामेव विशिनष्टि सर्वविद्याप्रतिष्ठां सर्वासां विद्यानां प्रतिष्ठाम् आश्रयस्ताम्। सर्वविद्याश्रयभूतामित्यर्थः । ब्रह्मविद्याविषयभूते ब्रह्मणि सर्वोपादानेऽखिलोपादेयस्यान्तर्गतत्वाद् ब्रह्म विद्यायां सर्वविद्यानामन्तर्भाव इति सर्वविद्याश्रयत्वं ब्रह्मविद्यायाः । ब्रह्मविदाऽविदितस्य कस्यचिदप्यभावा दितिभावः । सर्वविद्याश्रायत्वकथनादेव प्रस्तुतेयं ब्रह्मविद्या परमात्मविद्यैव नान्येति दृढीकृतं भवति । अथर्वाय अथर्वसंज्ञाय ज्येष्ठपुत्राय प्राह । अथर्व शब्दोऽकारान्तोऽत्रगृहीतः । अथर्वोहि ब्रह्मणः पुत्रेषु बहुषु सृष्टिप्रमुखेषु प्रथमो ब्रह्मसृष्टोऽतोऽस्य ज्येष्ठत्वम् । विद्याग्रहणधारणसामर्थ्यलक्षणञ्च ज्येष्ठत्वमस्याव-बुध्यास्मै एव विद्यां प्रोवाचोपदिदेशेति ॥१॥

विद्या सम्प्रदाय के प्रवर्तक पुरुष परम्परा गर्भित आख्यायिका की प्रशंसा के द्वारा श्रोता पुरुष की ब्रह्म विद्या में सादर प्रवृत्ति हो इसलिये कहते हैं-**'ओं ब्रह्मा'** इत्यादि । ब्रह्म हिरण्यगर्भ इन्द्र मरुत् अग्नि प्रभृति देवताओं के मध्य में प्रथम में सबके पहले अथवा प्रथम ज्ञानैश्वर्यादि गुणों से सर्वश्रेष्ठ समुत्पन्न हुए । वह ब्रह्म किस प्रकार के हुए ? इस जिज्ञासा के उत्तर में कहते हैं-**'विश्वस्य कर्ता'** इत्यादि । विश्व अर्थात् समस्त

भुवन जगत् के कर्ता उत्पादयिता। तथा उत्पादित समस्त जगत् के गोप्ता परिपालक हुए। ब्रह्मविद्या के प्रवर्तकों में प्रथमं रूपसे कथित जो ब्रह्मा का विशेषण रूपसे प्रदर्शित जो सर्वजनकत्व तथा सर्वपालकत्व है वह विद्या में गौरव प्रदर्शन परक है। प्रख्यात महिमाशील पुरुष से प्रवर्तित विद्या में गौरव होने से स्वभावत एव श्रोता को आदर होगा। पूर्वोक्त माहात्म्य विशिष्ट ब्रह्माजी ब्रह्मविद्या को अर्थात् परमात्म प्रापक विद्या को, कीदृश वह विद्या है ? इस जिज्ञासा के उत्तर में ब्रह्मविद्या के विशेषण को बतलाते हैं–**'सर्वविद्याप्रतिष्ठाम्'** सर्वविद्याओं का वह ब्रह्मविद्या प्रतिष्ठा है अर्थात् आधारभूत है। सर्वविद्या का आश्रय, क्योंकि ब्रह्मविद्या का विषयीभूत जो ब्रह्म-परमात्मा श्रीरामजी हैं जो कि सकल जगत् का उपादान हैं उसमें उपादेय कार्यरूप सकल जगत् अन्तर्भूत है अतः ब्रह्मविद्या में सर्वविद्या का अन्तर्भाव होता है इसलिये ब्रह्मविद्या सर्वविद्याओं का आश्रय है। ब्रह्मविद्या से अविदित हो ऐसा जगत् में कोई भी पदार्थ नहीं है। ब्रह्मविद्या में सर्वविद्या के आश्रय का कथन करने से प्रस्तुत जो यह ब्रह्मविद्या वह परमात्म विद्या ही है अन्य नहीं है ऐसा दृढ किया गया। उन ब्रह्माजी ने अथर्व नामक ज्येष्ठ पुत्र को इस विद्या का उपदेश दिया है।

यहां अथर्व शब्द अकारान्त है नान्त नहीं है राजन् के समान । अथर्वा नामक ब्रह्म सृष्टि के आदिकाल में अनेक पुत्रों में से सर्वप्रथम उत्पन्न हुए इसलिये पुत्रों में यह सर्वश्रेष्ठत्व है । विद्या का ग्रहण धारण सामर्थ्य लक्षण ज्येष्ठत्व को जान करके ब्रह्माजी ने अथर्वा को ही ब्रह्मविद्या का उपदेश दिया ॥१॥

**अथर्वणे यां प्रवदेत ब्रह्माथर्वा तां पुरोवा चाङ्गिरे ब्रह्मविद्याम् । स भारद्वाजाय सत्यवा हाय प्राह भारद्वाजोऽङ्गिरसे परावराम् ॥२॥**

जिस ब्रह्मविद्या को ब्रह्माजी ने बडे पुत्र अथर्वा के हेतु उपदेश किया था उस ब्रह्मविद्या को अथर्वा ने पहले स्व शिष्य अंगिर् को उपदेश दिया उस अंगिर् ने भरद्वाज गोत्रीय स्व शिष्य सत्यवाह को उपदेश दिया एवं भरद्वाज गोत्रीय सत्यवाह ने पर तथा अवर सभी विद्याओं का कारणभूत उस विद्या का स्व शिष्य अंगिरस् को उपदेश दिया ॥२॥

ब्रह्मा चतुर्मुखो यां ब्रह्मविद्याम् । अथर्वणे अथर्व नाम्ने स्वपुत्राय प्रवदेत प्रोक्तवान् । तां ब्रह्मविद्याम् । अथर्वा एतन्नामा ज्येष्ठो ब्रह्मपुत्रः । अत्राथर्वशब्दो नान्तो विवक्षितः । नान्तादन्तयोरुभयोरप्यथर्वशब्द योः सत्त्वात् । अङ्गिरे अङ्गिर्नामकाय स्वशिष्याय । पुरा पूर्वस्मिन् काले । उवाचोक्तवान् । स अङ्गिर्नामा

मुनिर्भारद्वाजाय भरद्वाजगोत्रोत्पन्नाय । सत्यवाहाय सत्यवाहनाम्ने ऋषये प्राह समुपदिदेश । भारद्वाजः सत्यवाहः । अङ्गिरसे अङ्गिरोनाम्ने शिष्याय प्रोक्तवान् । परावराम् । इदं विद्याविशेषणम् । परस्मात् परस्मादपरेण जनेन गृहीतेयं विद्याऽतः परावराताम् । यद्वा परा इतरा विद्या अपरा अपकृष्टाः सन्ति यस्या अपेक्षया सा परावरा ब्रह्मविद्या तामित्यर्थः ॥२॥

**'अथर्वणेयामित्यादि'** ब्रह्मा चतुर्मुखजी ने जिस ब्रह्मविद्या का अथर्व नामक स्वकीय पुत्र को उपदेश दिया । उसी ब्रह्मविद्या का अथर्वा एतन्नामक ब्रह्मा के ज्येष्ठ पुत्र ने यहां अथर्व शब्द नान्त विवक्षित है क्योंकि नान्त तथा अदन्त दोनों प्रकारक अथर्व शब्द हैं । उस अथर्वा ने अङ्गिर् नामक स्वकीय शिष्य को पूर्वकाल में उपदेश दिया । उस अङ्गिर् नामक मुनि ने भारद्वाज गोत्रोत्पन्न सत्यवाह नामक स्व शिष्य को इस ब्रह्मविद्या का उपदेश दिया । और भारद्वाज सत्यवाह ने आङ्गिरस नामक स्वकीय शिष्य को उपदेश दिया । अर्थात् परावर ब्रह्मविद्या का उपदेश दिया । एक के वाद दूसरों से यह विद्या गृहीत प्राप्त हुई है इसलिये इस ब्रह्मविद्या को परावरा कहते हैं । यद्वा ब्रह्मविद्या से अतिरिक्त जो विद्या वह है अनुत्कृष्ट जिसकी अपेक्षा से उसे परावरा ब्रह्म

विद्या अर्थात् साकेत प्रापक परमात्म विद्या कहते हैं ।२।

**शौनको ह वै महाशालोऽङ्गिरसं विधिवदुपसन्नः पप्रच्छ । कस्मिन्नु भगवो विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवतीति ।।३।।**

यह प्रसिद्ध है कि बडे शाला वाले शौनक ऋषि ने सत्यवाह के शिष्य अंगिरा ऋषि के पास विधिवत् उपस्थित होकर विनय के साथ प्रश्न किया हे भगवन् आदरणीय ऋषिवर ? किस तत्त्व के ज्ञात हो जाने पर यह सबकुछ विज्ञात हो जाता है यह मेरी जिज्ञासा है ।।३।।

ह वै शब्दौ निश्चयार्थौ । शौनकः शुनकस्यापत्यं पुमान् शुनकपुत्रो महाशालो महती शाला भवनं यस्य तादृशो बृहत्सौधसमन्वितो महागृहस्थः । विधिवच्छास्त्रदृष्टेन विधिना समित्पाण्यादिर्भूत्वा । उपसन्नः शरणमुपगतः सन्नङ्गिरसं मुनिं पप्रच्छ पृष्टवान् । स मित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठमिति नियममनुसरन् तं संप्राप्य पृष्टवाञ्छौनक इतिभावः । यद्यप्यथर्वादिषु विधिवदुपसत्तिर्न प्रतिपादिता तथापि शास्त्रस्य सर्वसाधारण्येन तेष्वपि साऽवश्यमासीदिति गम्यते । न ह्यप्रदर्शनमात्रेणाभावप्राप्तिः इति देहलीदीपकन्यायेन शौनके समुपदर्शित इति ध्येयम् । किं पृष्टवाञ्छौनक इत्याकांक्षायामाह प्रश्नस्वरूपम् कस्मिन्नु इति । अत्र नु शब्दः वितर्के । हे भगवो भगवन् ! गुरो ! कस्मिन् विज्ञाते

**सर्वमिदं विज्ञेयं चिदचिदात्मकं जगद् विज्ञातं भवति इति उपादानभूतमृदादिद्रव्यपरिज्ञान उपादेयभूतघटशरावादिकं विज्ञातं भवतीति लोके दर्शनादस्य चिदचित्प्रपञ्चस्यापि किमपि भवेन्नु उपादानं यस्मिन्नेकस्मिन् विज्ञाते सर्वस्यास्य विज्ञानं भवेत् तत्किमिति प्रश्नाशयः ॥३॥**

**'शौनकोह वै'** इत्यादि । मन्त्र घटक ह तथा वै शब्द निश्चयार्थक है । शौनक शनक का अपत्य पुरुष महाशाला बहुत बडी शाला भवन है जिसे एतादृश बडा भवन वाला महागृहस्थ कोई प्राचीनकाल में थे । उस महाशालक शौनक ने विधिवत् अर्थात् कुशादिक हाथ में लेकर विनयपूर्वक अंगिरस के शरणागत हो करके अंगिरस से प्रश्न किया । अर्थात्-**'समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्'** इस शास्त्रीय नियम के अनुसार गुरु के समीप में विनयपूर्वक प्रश्न किया । यद्यपि अथर्वादिक में विधिवत् उपसत्ति की चर्चा नहीं की गई है तथापि उपसत्ति शास्त्र के सामान्य शास्त्र होने से अथर्वादिक में भी उपसत्ति की कल्पना करलेनी चाहिये । अदर्शन मात्र से अभाव नहीं हो सकता है क्योंकि उपसत्ति विधायक शास्त्र नित्य है अतः हमलोगों के लिये भी वह विधि शास्त्र आवश्यक है । अतः देहलीदीपन्याय से मध्य में

अवस्थित शौनक में-बतलाया, पूर्वकालिक तथा अपर कालिक सबके लिये आवश्यक है। शौनक महाशाल ने अंगिरस को क्या पूछा ? इस जिज्ञासा के उत्तर में बतलाते हैं-प्रश्नस्वरूप को-**'कस्मिन्नु'** इत्यादि। यहां नु शब्द वितर्क अर्थ में है। हे भगवः हे भगवन् पूजनीय ? किस एक पदार्थ के जान लेने पर सर्व यह चिदचिदात्मक ज्ञेय जगत् विज्ञात हो जाता है। उपादान कारण मृत्तिका के ज्ञान हो जाने पर मृत्तिका का कार्य जो घट शरावादिक कार्य वह विज्ञात होता है इसप्रकार लोक में देखने में आता है। तो वहां जैसे घटादि का उपादान मृत्तिका है उसी तरह प्रकृत जडचेतन साधारण जगत् का कौन कारण है जिसके ज्ञान हो जाने पर यह संपूर्ण जगत् विज्ञात हो जायगा। इस तरह जगत् के अभिन्न निमित्तोपादान विषयक प्रश्न होता है ॥३॥

**तस्मै स होवाच। द्वे विद्ये वेदितव्ये इति ह स्म यद् ब्रह्मविदो वदन्ति परा चैवापरा च ॥४॥**

उन प्रसिद्ध महर्षि अंगिरा ने शौनक ऋषि से कहा उस तत्त्व के प्राप्ति हेतु उपाय स्वरूप जानने योग्य दो विद्यायें हैं ऐसा ब्रह्मज्ञानी महर्षिवर्ग उपदेश करते आये हैं वे विद्यायें परा एवं अपरा नाम से विख्यात हैं ॥४॥

**एवं पृष्टः सोऽङ्गिरर्षिस्तस्मै शुनकसुताय सत्यवाहा**

योवाचोक्तवान् । ह निश्चितम् । द्वे विद्ये वेदितव्ये सम्पादनीये मुमुक्षुभिरितिशेषः । कथमेवमित्याकांक्षाया माह-इति एवं रूपेण यद् यस्माद् हेतोर्ब्रह्मविदो वेदार्थावगन्तारः परमार्थज्ञानवन्तो मुनयो वदन्ति । हस्म निश्चयातिशयार्थम् । ब्रह्मवादिन एव मुमुक्षुसम्पाद्यतया विद्याद्वयं वदन्ति । स्वकल्पनया मया नोच्यत इति भावः । के ते विद्ये इत्यत्राह परा चैवापरा च । परा साक्षात्परमात्मप्रापकतया श्रेष्ठा परमात्मगोचराऽपरोक्ष ज्ञानरूपा । अपरा अनुसंहितफलस्य पुंसो धर्मानुष्ठानादिना स्वर्गादिफलसाधनभूता अनसंहितफलस्य चित्त विशुद्धिद्वाराऽपरोक्षज्ञानजननोपयोगिनी परम्परया ब्रह्म प्रापकतयाऽश्रेष्ठा ऋग्यजुः सामाद्यागमजन्यपरोक्षज्ञान रूपा । परमपरञ्चेति ज्ञानद्वयमपि मुमुक्षुजनैरुपादेयम् । तत्र परज्ञानप्राप्यमेव तत् यस्मिन् विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवतीत्यन्तर्गूढाशयः ॥४॥

'तस्मै सहेत्यादि' इसप्रकार से जब अंगिरा को पूछा तब उस आंगिरस शौनक ने सत्यवाह से कहा । ह शब्द निश्चयार्थक है-दो ही विद्याएं वेदितव्य हैं अर्थात् मुमुक्षु व्यक्तियों से ये दो ही विद्याएं समुपासनीय हैं । क्यों ऐसा ? एतादृश जिज्ञासा के उत्तर में कहते हैं- 'इति ह स्म' इत्यादि । इति-अर्थात् एवं रूपसे जिस

कारण से ब्रह्मवित् वेदार्थ के ज्ञाता परमार्थ ज्ञानवान् मुनिलोग कहते हैं। ह तथा स्म ये दोनों निपात निश्चय तथा अतिशयार्थक हैं। मुमुक्षुओं से संपादनीय विद्या द्वय हैं ऐसा ब्रह्मवादी लोग ही कहते हैं, मैं अपनी कल्पना से नहीं कहता हूँ, कौन ये विद्याएं हैं ? तत्राह- **'पराचैवापराचैवेति'** परा विद्या साक्षात् परमात्मा के प्रापक होने से परमात्म विषयक अपरोक्ष ज्ञानरूप विद्या परा अर्थात् श्रेष्ठ है। और अपरा फलाभिसंधिरहित पुरुष के धर्मानुष्ठानादि द्वारा स्वर्गादि फल के साधनरूप हैं। फलाभिसंधिरहित पुरुष को अन्तःकरण पवित्रता द्वारा अपरोक्ष ज्ञान के उत्पादन में उपयोगी है। अतः परम्परया ब्रह्म प्रापक होने से ऋग् यजु सामाद्यागम से जायमान परोक्षज्ञानरूपा अश्रेष्ठा है। पर अपर ये दोनों ज्ञान मुमुक्षुओं से उपादेय हैं। उसमें परज्ञान से प्राप्य ही वह है जिसके विज्ञान होने से ये निखिल प्रपञ्च विज्ञात होते हैं यह गूढाशय है ॥४॥

**तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षाकल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति । अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते ॥५॥**

उन परा एवं अपरा में से ऋग्वेद यजुर्वेद सामवेद अथर्ववेद शिक्षा कल्प व्याकरण निरुक्त छन्द एवं ज्योतिष ये अपरा विद्याएँ हैं तथा जिस ज्ञान से वह अक्षर परब्रह्म यथार्थ स्वरूप से ज्ञात होता है वह परा विद्या है ॥५॥

तत्र तयोर्विद्ययोर्मध्येऽपरा विद्योच्यत इति शेषः । यद्यप्युद्देशक्रमेण प्रथमतः परायाः कथनमुचितं तथापि परविद्यायामुपयोगित्वेन प्रथमभावितयाऽऽर्थक्रमस्या परस्यामेव विद्यायां सत्वाच्छाब्दक्रमापेक्षया चास्य बलीयस्वात् प्रथममपरस्या निरूपणं सूचीकटाहन्या याच्चेति बोध्यम् । ऋग्वेदादयश्चत्वारो वेदाः शिक्षा दीनि षडङ्गानि । एतज्जन्यं शब्दं परोक्षं ज्ञानमेवापरा विद्येत्यर्थः । अथ शब्द आनन्तार्यार्थकः । अपरविद्या स्वरूपकथनान्तरं परविद्या निरूप्यत इत्यर्थः । यया विद्यया तद् यत्त्वया-'कस्मिन्नु भगवो विज्ञाते' इत्या दिना सर्वोपादानं पूर्वं पृष्टं तदित्यर्थः । अक्षरं क्षर णशून्यं सर्वोपादानभूतं परं ब्रह्माधिगम्यते प्राप्यत इत्यर्थः । अधिपूर्वकगम् धातोः प्राप्त्यर्थबोधकत्वात् । परया त्वक्षरप्राप्तिः ऋग्वेदादिमयाऽपरेति विष्णुपुरा णाच्च । भूतयोनिशब्दितमक्षरं ब्रह्म येनापरोक्षज्ञानेन प्राप्तं भवति तदेवापरोक्षज्ञानं बोधायनवृत्तिकारश्रीपु रुषोत्तमाचार्यापरपर्याय भगवद्बोधायनोक्तविवेकविमो कादिसाधनसप्तकजन्यं परा विद्योच्यत इतिभावः ।

**उपनिषदामपि वेदान्तर्गतत्वेन प्रथमं वेदजन्यपरोक्षज्ञान विषयो भवति परमपुरुषः पश्चाच्च विवेकादिभिरुप जनितस्यापरोक्षज्ञानस्यापि विषयो भवति ततस्तत्प्रा-प्तिर्भवत्युपासकस्येत्युभयोर्विद्ययोरुपयोगः परब्रह्मप्राप्ता वस्तीति रहस्यम् । अत एव 'वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः' इत्यादिस्मृतेः 'तं त्वौपनिषदं पुरुषं पृच्छामी'ति श्रुतेश्च विरोधशङ्कापि न प्रादुर्भवति ॥५॥**

**'तत्रा परेत्यादि'** तत्र उन दोनों विद्याओं के मध्य में अपरा विद्या उसको कहते हैं। यद्यपि उद्देश्य क्रम से परा विद्या का ही प्रथमतः कथन उचित था तथापि पर विद्या में अपराविद्या के उपयोगी होने से तथा प्रथमोप स्थित होने से आर्थक्रम अपर विद्या में है और यह आर्थक्रम शाब्द क्रमापेक्षया बलवान् होने से और सूची कटाह न्याय से प्रथमतः अपर विद्या का ही निरूपण किया गया है। ऋग्वेदादिक चार वेद हैं शिक्षादिक छ अंग हैं। इन सब से जायमान जो शाब्द परोक्षज्ञान उसी को अपर विद्या कहते हैं। यहाँ अथ शब्द आनन्तर्यार्थक है अर्थात् अपर विद्या स्वरूप के कथन के वाद में परविद्या का निरूपण किया जाता है। जिस विद्या के द्वारा तत् जिसे आपने-**'कस्मिन्नु'** इत्यादि प्रकरण से सर्वोपादान को आपने पूछा था वह अक्षरः

क्षरण शून्य सर्वोपादानुभूत परंब्रह्म श्रीराम प्राप्त किया जाता है। अधिपूर्वक गम धातु का अर्थ प्राप्ति होता है। परविद्या से अक्षर ब्रह्म की प्राप्ति होती है। और ऋग्वेदादिक विद्या अपरा है। इत्यादि विष्णुपुराण का भी वचन है। भूतयोनि शब्द प्रतिपादित अक्षर ब्रह्म जिस अपरोक्षज्ञान से प्राप्त होते हैं वही अपरोक्षज्ञान वृत्तिकार श्रीबोधायनाचार्य महर्षिजी से कथित होता है। उपनिषत् भी वेद के अन्तर्गत है इसलिये प्रथमतः वेदजन्य परोक्षज्ञान का विषय परमपुरुष होते हैं तत्पश्चात् महर्षि श्रीपुरुषोत्तमाचार्यज़ी श्रीबोधायनोक्त विवेकादि सात साधनों से जायमान अपरोक्ष ज्ञान का विषय होता है परम पुरुष। तब तादृश परमपुरुष की प्राप्ति उपासक पुरुष को होता है। इसलिये दोनों विद्याओं का उपयोग पर ब्रह्म की प्राप्ति में होती है यह रहस्य है। अत एव 'सर्व वेदों से मैं वेद्य हूँ' 'उस औपनिषद पुरुष को पूछ ता हूँ' इत्यादि श्रुति के विरोध की शंका भी नहीं है।५।

**यत्तदद्रेश्यमग्राह्यमगोत्रमवर्णमचक्षुश्रोत्रं तदपाणिपादम्। नित्यं विभुं सर्वगतं सुसूक्ष्मं तदव्ययं यद्भूतयोनिं परिपश्यन्ति धीराः ॥६॥**

सर्व जग व्याप्त भी वह परब्रह्म आँख से नहीं दिखाई देता है हाथ से पकडा नहीं जाता है एवं गोत्र-कुल रहित है और ब्राह्मण प्रभृ

ति वर्ण रहित है तथा आँख एवं कान रहित है तो हाथ तथा पैर से भी रहित है। वह परब्रह्म नित्य विभु एवं सर्वगत है और अत्यन्त सूक्ष्म एवं अव्यय है ऐसे परतत्त्व सर्वेश्वर श्रीरामजी जो सब भूतवर्ग के उपादानकारण हैं को धीर साधक लोक अच्छी प्रकार से देखते हैं ॥६॥

**परविद्याप्राप्यमक्षरस्वरूपमेव नानाविशेषणविशिष्टं दर्शयतियत्तदिति । यत् त्वया पूर्वं पृष्टं सर्वोपादानं तत् परविद्याप्राप्यमक्षरम् । अद्रेश्यम् चक्षुरादि ज्ञानेन्द्रियजन्यज्ञानाविषयः । अग्राह्यं वागादिकर्मेन्द्रियव्यापाराऽविषयः । अत एव वाचामगोचरो ग्रहणाद्यविषयश्चेतिभावः । अगोत्रं गोत्रं कुलं तद्रहितम् । यदि कोऽप्यस्य मूलं स्यात् तदा तदन्वये जातमेतदक्षरं स्यात् । न च तदस्यास्तीतिभावः । अवर्णं वर्णा ब्रह्मक्षत्रादयः शुक्लनीलादिरूपरहितं वेत्यर्थः । एतावतेन्द्रियाविषयत्वं मूलपुरुषहीनत्वं ब्राह्मणत्वादिजातिरहितत्वं रूपादिविरहित्वञ्चाभिधाय सम्प्रति करण-शून्यत्वमपिदर्शयति-अचक्षुश्रोत्रं तदपाणिपादं तत्प्रसिद्धं पूर्वोक्तं वाऽक्षरं चक्षुःश्रोत्राभ्यां शून्यम् । उपलक्षणमिदं ज्ञानेन्द्रियजातस्य तेन ज्ञानेन्द्रियशून्यमित्यर्थः । अपाणिपादमित्यत्र पाणिपादशब्दौ वागादीनां कर्मेन्द्रियाणामुपलक्षकौ तेन वाक्पाणिपादादिकर्मेन्द्रियरहितमित्यर्थः । नित्यं विनाशशून्यं तेन कालापरिच्छिन्नत्वमुक्तम् । विभुं सर्वदेशसम्बन्धिनम् ।**

तेन देशपरिच्छेदराहित्यमुक्तम् । सर्वगतं सर्वेषु स्वातिरिक्तचिदचित्पदार्थेषु स्थूलसूक्ष्मभेदभिन्नेषु गतमन्तः प्रविश्य वर्तमानम् । सुसूक्ष्मं सूक्ष्मतममित्यर्थः । अत एव सूक्ष्मेषु सूक्ष्मतरेष्वप्यन्तःप्रवेशयोग्यतास्यास्तीति भावः । तद् पूर्वोक्तैर्विशेषणैर्युक्तमक्षरम् । अव्ययमपचयादिविकाररहितम् । यदक्षरं धीरा विवेकिनो भूतयोनिं भूतानामुपादानं परिपश्यन्ति परितः साक्षात् कुर्वन्ति । धीरा इत्यनेनाधीराणां न भूतयोनितया साक्षात्कारसंभवः कर्मावृतत्वात्तदीयदृष्टेः । विवेकिनस्तु प्रह्लादादय इव स्तम्भादिष्वपि भगवन्तं श्रीरामं साक्षात् कुर्वन्तीतिभावः ॥६॥

परविद्या से प्राप्य जो अक्षर ब्रह्म तादृश अक्षर के स्वरूप को नाना विशेषण विशिष्ट को बतलाते हैं- **'यत्तदिति'** जिसे तुमने पहले पूछा था सबका उपादान परविद्या से प्राप्य अक्षर को वह अक्षर ब्रह्म **अद्रेश्य** है चक्षुरादि ज्ञानेन्द्रिय जनित ज्ञान का विषय नहीं होता है । तथा **'अग्राह्य'** है वागादि कर्मेन्द्रिय द्वारा ग्रहण करने का विषय नहीं है । अत एव वाणी का तथा ग्रहण का विषय नहीं है । **अगोत्रम्** गोत्र नाम है कुल का तो तादृश कुलरहित है । यदि उसका कोई मूल होता है तब उसके वंश में वह अक्षर पुरुष जायमान है ऐसा

कहलाता परन्तु इसका तो कोई मूल नहीं है। **अवर्ण** वह अक्षर ब्रह्म है ब्राह्मणादिक अथवा शुक्ल नीलादिक वर्णपद वाच्य है उस वर्ण से रहित है। अर्थात् ब्राह्मण क्षत्रियादि जाति विशेष रहित हैं तथा नीलादि गुणरहित हैं। इससे इन्द्रियाविषयत्व मूलपुरुष रहितत्व ब्राह्मणत्वादि जाति रहितत्व तथा रूपादि रहितत्व का कथन करके सम्प्रति उस अक्षर परमपुरुष में करण शून्यत्व का प्रदर्शन करते हैं-**'अचक्षुः श्रोत्रं तदपाणिपादमित्यादि'** जो वह सर्वप्रसिद्ध अथवा पूर्वोक्त अक्षर ब्रह्म है वह चक्षु श्रोत्रादि से रहित है। चक्षुः श्रोत्र पद ज्ञानेन्द्रिय का उपलक्षक है अतः ज्ञानेन्द्रिय रहित अक्षर ब्रह्म हैं- **'अपाणिपादम्'** में पाणिपाद पद वागादिक कर्मेन्द्रिय का उपलक्षक है अतः वागादि कर्मेन्द्रिय से रहित हैं। वह ब्रह्म नित्य हैं विनाश शून्य हैं एतावता कालपरिच्छेदाभाव का प्रदर्शन किया। विभु व्यापक सर्वदेश सम्बन्धी है एतावता देश परिच्छेदाभाव का समर्थन किया गया। सर्वगत हैं अर्थात् सब में स्वातिरिक्त चिदचित् पदार्थों में स्थूल सूक्ष्मभेद भिन्न में गत अर्थात् अन्तः प्रविष्ट हो करके विद्यमान है। अत्यन्त सूक्ष्म है। अत एव सूक्ष्म सूक्ष्मतर में भी अन्तः प्रवेश की योग्यता है। एतादृश पूर्वोक्त विशेषणों से युक्त वह अक्षर ब्रह्म

हैं। वह अव्यय हैं अपचयादि विकार रहित हैं। जिस अक्षर ब्रह्म को विवेकी विद्वान् भूतयोनि का साक्षात्कार करते हैं जो कि सर्वभूतों के उपादानकारण हैं। धीरा इस कथन से यह सिद्ध होता है कि अधीर व्यक्ति को भूतयोनितया परमेश्वर का साक्षात्कार नहीं होता है क्योंकि अधीर व्यक्ति की दृष्टि कर्म से आवृत्त है। विवेकी पुरुष तो प्रह्लादादि के समान स्तम्भादिक में भी भगवान् श्रीरामजी का साक्षात्कार करते हैं ॥६॥

**यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते च यथा पृथिव्यामोषधयः संभवन्ति। यथा सतः पुरुषात्केशलोमानि तथाऽक्षरात्संभवतीह विश्वम् ॥७॥**

जिस प्रकार से मकडी जाल को स्वतः बनाती एवं निगल भी जाती है एवं जैसे पृथिवी में ओषधियां उत्पन्न होती हैं और जैसे जिन्दे पुरुष अर्थात् चेतन से अचेतन केश एवं रोयें उत्पन्न हो जाते हैं वैसे ही इस सृष्टि क्रम में अक्षर-विकारशून्य परब्रह्म श्रीरामजी से चेतन तथा अचेतन स्वरूप विश्व समुत्पन्न होता हैं ॥७॥

यद् भूतयोनिं परिपश्यन्ति धीरा इत्यत्राक्षरस्य भूतयोनित्वं प्रतिपादितं तदेव दृष्टान्तत्रयेण संगमयितुमाह-यथोर्णनाभिरिति। ऊर्णनाभिः कीटविशेषो लूताशब्दवाच्यः। स स्वमुखादेव तन्तून् सृजति बहिः प्रसारयति ततस्तेषु विहरति कृते च विहारे मुखादेव

स्वसृष्टान् तन्तून् गृह्णते संहरति । ग्रसतीत्येतत् । न चायं कीटविशेषः तन्तूनां सर्जने संहरणे च किमपि कारणान्तरमपेक्षते न चास्य तस्मिन् कार्यजनने कश्चिद् विकारः पूर्वावस्थाविनाशादिरूपो भवति तथैव अक्षरमपि कारणान्तरनिरपेक्षं स्वयमविकारमेव समस्तं जगत् सृजति प्रलयावस्थायामुपसंहरति च तस्माद्भू तयोनिरित्युच्यते । यथा पृथिव्यामोषधयः संभवन्ति । पृथिवी हि एकैव ओषधीनां नानाजातीनामुपादानं भवति यतो वृष्टिकाले नानाजातय ओषधयः संभवन्ति समुत्पद्यन्तेऽस्यां पुनश्च ग्रीष्मकाले प्रचण्डतरमार्त्तण्ड किरणसम्पर्काच्छुष्कतामापन्नाः पृथिव्यामेव लीना भवन्ति तथा अक्षरतोऽपि विलक्षणमेतज्जगदुत्पद्यते तत्रैव संहारमपि यातीति एकस्यानन्तप्रपञ्चोपादानत्वं सिद्ध्यति । यथा सतो जीवतः पुरुषाच्चेतनाल्लोमानि केशनखादीन्यचेतनानि कारणापेक्षया विलक्षणानि जायन्ते तथैव अक्षरात् सर्वप्रपञ्चविलक्षणादेवास्माद् विश्वं चेतनाचेतनात्मकं विविधं जगदिह संसारे संभवति जायते ।

एतेन यदुपादानं तत् कारणान्तरसापेक्षं भवति, सविकारं भवति, उपादेयसरूपमेव च भवति । अक्षरन्तु निमित्तान्तरनिरपेक्षं निर्विकारमुपादेयविलक्षणञ्च

**कथं भूतयोनिः स्यादिति शंका निरस्ता । लूताया उपादानभूताया अपि नानाकार्योपादानत्वदर्शनात् पुरुषस्य विलक्षणत्वेऽपि केशाद्युपादानत्वदर्शनाच्चेतिभावः ७**

'**यद्भूतयोनिं परिपश्यन्ति धीरा**' इस प्रकरण में अक्षर ब्रह्म में भूतयोनित्व का प्रतिपादन किया गया है उसी को तीन दृष्टान्त के द्वारा समझाने के लिये कहते हैं-'**यथोर्णनाभिरित्यादि**' जिस तरह ऊर्णनाभि लूता शब्द वाच्य कीट विशेष अपने मुख से तन्तु को बनाता है तथा उन तन्तुओं को फैलाता है, तब उस तन्तु जाल पर स्वेच्छया परिभ्रमण करने के वाद अपने मुख से ही स्वोत्पादित तन्तु जाल को संहरति संहार कर लेता है। किन्तु लूता कीट तन्तुओं के उत्पादन तथा संहरण करने में किसी भी सहकारी कारणान्तर की अपेक्षा को रखता है नवा उसे यथोक्त कार्योत्पादन करने से कोई विकार पूर्वावस्था विनाशादि लक्षण होता है। उसी प्रकार से अक्षर परमात्मा श्रीरामजी करणान्तर निरपेक्ष हो करके स्वयं अविकारात्मक सकल जगत् को बनाते हैं। और प्रलयावस्था में सबको अपने में उपसंहृत भी करलेते हैं। इसलिये इस अक्षर परमात्मा को भूतयोनि शब्द से शास्त्र में कथन किया गया है। यथा वा पृथिवी में अनेक प्रकार की ओषधियों की उत्पत्ति होती है।

अर्थात् एक ही पृथिवी अनेक जातीयक ओषधियों का उपादानकारण है जिससे कि वृष्टिकाल में नाना जातीयक ओषधियों की उत्पत्ति होती है पुनः निदाघ समय में प्रचण्ड सूर्य किरण से शुष्क हो करके पृथिवी में ही लीयमान हो जाती हैं । इसी तरह अक्षर परमात्मा से कारणापेक्षया विलक्षण जगत् सर्गकाल में उत्पन्न होता है तथा प्रलयकाल में प्रलीयमान भी उसी अक्षर में हो जाता है । यथा वा चेतन जीवित जो पुरुष है उससे केश तथा नख अचेतन कारणापेक्षयाऽतिविलक्षण उत्पन्न होता है इसी तरह सर्वप्रपञ्चापेक्षया अति विलक्षण अक्षर परमात्मा से विश्व समस्त जडचेतनात्मक जगत् सर्गकाल में समुत्पन्न होते हैं ।

**'एतेन'** इसका वक्ष्यमाण **'निरस्ता'** के साथ अन्वय होता है । किसी का कथन है कि जो उपादान कारण होता है वह कर्तादि कारणान्तर सापेक्ष होता है यथा मृत्तिका कुलाल सापेक्ष है । जो उपादान होता है वह सविकार होता है पूर्ववत् । जो उपादान होता है वह उपादेय का सरूप होता है दृष्टान्त मृत्तिका का ही । यह अक्षर ब्रह्म तो निमित्तान्तर निरपेक्ष है निर्विकार है तथा उपादेय कार्य से विलक्षण है तब यह अक्षर किस तरह से भूतों का उपादानकारण होगा । इसप्रकार की जो

शंका थी वह निरस्त हो जाती है। क्योंकि लूता तन्तु का उपादान है परन्तु निमित्तान्तर सापेक्ष नहीं है ऐसा ही देखने में आता है तथा विकार रहितत्व भी लूता में है। एवं एक ही पृथिवी नाना कार्यों का उपादान कारण होती है। पुरुष चेतन है तथापि अचेतन स्वापेक्षया अति विलक्षण नखादि का उत्पादक होता है। अतः परमेश्वर निमित्तान्तर निरपेक्ष तथा निर्विकार एवं विलक्षण विश्व का जनक है ॥७॥

**तपसा चीयते ब्रह्म ततोन्नमभिजायते ।**
**अन्नात्प्राणोमनः सत्यं लोकाः कर्मसु चामृतम् ८**

परब्रह्म ज्ञानस्वरूप तप से बढता है यानी सृष्टि हेतु अग्रसरित होता है तब उससे अन्न-चेतन एवं अचेतन समूह सृष्टि उत्पन्न होती है अनन्तर चित् एवं अचित् स्वरूप अन्न से प्राण मन सत्य यानी भोक्तृ समूह एवं स्वर्ग प्रभृति सभी लोक तथा कर्मों में अमृत अर्थात् मोक्षात्मकता कर्म उत्पन्न होता है ॥८॥

अक्षराद् भूतयोनेरिदं विश्वं यथा जायते स क्रमः प्रदर्श्यतेऽत्र मन्त्रे । ब्रह्मभूतयोनितया वर्णितमक्षरं ब्रह्मेत्यर्थः । तपसा संकल्परूपेण ज्ञानेन 'यस्यज्ञानमयं तपः' इत्युक्तेः । चीयते वर्धते सृष्ट्युन्मुखं भवतीत्यर्थः । एकोहं बहुस्यामिति संकल्पविशिष्टं ब्रह्म अंकुरजननोन्मुखं बीजमिवोत्फुल्लतां गतमिव भव

तीत्येतत् । ततः संकल्परूपतपोविशिष्टाद् ब्रह्मणोऽन्न मद्यत इत्यन्नं भोग्यभूतं प्रधानम् । अभिजायते । महदादिरूपेण जायत इत्यर्थः । भगवत्संकल्पवशाद् व्याकृतं प्रधानं महदङ्कारादिपरिणामवद् भवतीति- भावः । अन्नान्महदादिरूपेण परिणतात् प्रधानात् प्रा णो भोगोपकरणभूतो मुख्यः प्राणः प्राणपानादिभेद भिन्नो मनोऽन्तःकरणमुपजायते । तस्मादेव सत्यं सत्यो भोग्यभोगोपकरणानां स्वकारणे निलीयमानेऽपि स्व स्वरूपेणवर्तमानतया सत्यशब्दाभिधेयो जीवो भोक्तृ वर्गो देवमनुष्यादिरूपेण जायते । यद्यपि न जीवस्य जनिरुत्पत्तिरूपानित्यत्वात् तथापि शरीरसम्बन्धो जनि रत्र विवक्षितेतिधेयम् । लोका भोगस्थानभूताः स्वर्ग भूलोकादयो जायन्ते तस्मादेवान्नात् । ततस्तेषु लोकेषु कर्माणि वर्णाश्रमविहितानि जायन्ते । तेषु कर्मसु निमित्तभूतेषु अमृतमवश्यभोक्तव्यममृतमिव स्वादु स्वर्गादिफलं जायते । यद्वा अमृतममृतत्वसाधकं कर्म कर्मसु मध्ये जायत इत्यर्थः । एतेन संकल्परूपाधिष्ठान शक्त्युपचिताक्षरब्रह्मणाऽधिष्ठितात् प्रधानादेव भोग्य भोगोपकरणभोगस्थानरूपमिदं विविधविश्वमुत्पद्यते क्रमेणैतेनेति भूतोपादानत्वमक्षरस्य समर्थितं भवति ८

अक्षर भूतयोनि से जिस क्रम से यह जगत् उत्पन्न

होता है उस क्रम को इस मन्त्र में बतलाते हैं-'**तपसा चीयते ब्रह्म**' इत्यादि । भूतों के उपादानकारणरूप से वर्णित जो भूतयोनि ब्रह्म है वह ब्रह्म तप से संकल्परूप ज्ञान से । श्रुत्यन्तर में कहा है कि-'जिसका ज्ञानमय ही तप है' चीयते बढता है अर्थात् सृष्टि के उन्मुख होता है। 'एक ही में अनेक रूपमें होऊँ' इस तरह संकल्प विशिष्ट ब्रह्म अंकुरोत्पादन में उन्मुख बीज के समान जैसे उत्फुल्लता को प्राप्त किया हो ऐसा होता है। तदनन्तर संकल्परूप तपो विशिष्ट ब्रह्म से भोग के योग्य भूत अन्न ब्रीहि यवादिक महदादि क्रम से पैदा होता है । अर्थात् परमेश्वर के संकल्प के बल से अव्याकृत जो प्रधान वह महादि परिणामवान् हो जाता है । उसके वाद अन्न से अर्थात् महदादिरूपेण परिणत प्रधान से प्राण अर्थात् भोग में उपकरण भूत मुख्यप्राण अपानादि से युक्त मन अन्तःकरण पैदा होता है । सत्य जीव अर्थात् उससे भोग्य भोगोपकरण के स्वकारण में विलीयमान होने पर भी स्वरूप से वर्तमान होने के कारण से सत्य शब्द प्रतिपाद्य जीववर्ग देव मनुष्यादिरूप से उत्पन्न होते हैं । यद्यपि जीव नित्य है तो इसकी उत्पत्ति घटादिवत् नहीं होती है तथापि प्रकृत में उत्पत्ति शब्द का अर्थ देह के साथ प्राथमिक संयोगरूप ही विवक्षित है । उसी अन्न

से लोक भोग का स्थानभूत स्वर्गभूरादि लोकों की उत्पत्ति हुई । तदनन्तर उन लोकों में वर्णाश्रम विहित कर्मों की उत्पत्ति हुई । उन कर्मों में अमृत अवश्य भोक्तव्य अमृत के समान सुस्वादु स्वर्गादिक फल उत्पन्न हुआ । यद्वा अमृतत्व का साधक कर्म उत्पन्न हुआ । एतावता संकल्परूपाधिष्ठान शक्ति से उपचित अक्षर ब्रह्म से अधिष्ठित प्रधान से भोग्य भोगोपकरण भोगस्थानरूप यह अनेक प्रकार का विश्व प्रदर्शित क्रम से उत्पन्न होता है । अतः सर्वभूत का उपादानत्व अक्षर में समर्थित होता है ॥८॥

**यः सर्वज्ञः सर्वविद्यस्य ज्ञानमयं तपः ।**

**तस्मादेतद् ब्रह्म नामरूपमन्नं च जायते ॥९॥**

卐 इति प्रथममुण्डके प्रथमः खण्डः ॥१॥ 卐

जो परपुरुष श्रीरामजी सर्वज्ञ यानी सामान्यतया सभी विषयों का जानकार एवं सर्ववित् अर्थात् विशेष रूपसे अलग अलग ज्ञान वाला है तथा जिसका ज्ञानमय तप है उस सृष्टि के हेतुतया परब्रह्म से यह चेतन एवं अचेतनरूप ब्रह्म उत्पन्न होता है तथा उसी से नाम एवं रूप उत्पन्न होते हैं और नामरूप के समान ही अन्न यानी भोग्य तथा भोक्तृवर्ग भी उत्पन्न होते हैं ॥९॥

पूर्वमन्त्रोक्तार्थमुपसंहरन् तपःशब्दार्थं ब्रह्मणः सर्वज्ञत्वसर्ववित्त्वे च दर्शयति-यः सर्वज्ञो यः पूर्वोक्त

लक्षणो भूतयोनिः सर्वं वस्तु स्थूलसूक्ष्मस्वरूपं सामान्यरूपेण जानातीति सर्वज्ञः स सर्ववस्तु विशेष रूपेण तदसाधारणरूपेणेत्येतत् । वेत्तिजानातीति सर्व वित् । स्वरूपतः प्रकारतश्च सर्वविषयकज्ञानवान् भूत योनिपदनिर्दिष्टोऽक्षराख्यः परमपुरुष इतिभावः । यस्या क्षरस्य भूतयोनेः तपो ज्ञानमयं सङ्कल्परूपमेव । जग ति सर्जनीये संकल्पातिरिक्तं किमप्यन्यत् कर्म तस्य ना वश्यकं भवतीतिभावः । तस्मात् संकल्पवतः सृष्ट्युन्मु खादक्षराद् ब्रह्मण एतदव्याकृतं प्रधानं नामरूपं जा यते । नित्यस्य प्रधानस्य जनेरसंभवान्नामरूपविशिष्टं प्रधानं भवतीत्यर्थः । तन्नामरूपं च किमाकारकमित्य त्राह-अन्नं च भोग्यभूतपृथिव्याद्याकार एव रूपम् । पृथिवीत्यादिकञ्च नामेत्यर्थः । उपलक्षणमेतद् भोक्तृ भोगस्थानकर्मादीनां पूर्वमन्त्रोक्तानाम् । एवं पूर्वमन्त्रोक्तं भूतयोनित्वमनूद्य समर्थितमक्षरस्य ब्रह्मणो भवतीति भावः ॥९॥

卐 इति भगवद्रामानन्दाचार्यप्रणीतानन्दभाष्योपेते
प्रथममुण्डके प्रथमखण्डः ॥१॥ 卐

इससे पूर्वमन्त्र में कथित जो पदार्थ उसका उपसंहार करते हुए तपः शब्द का अर्थ और ब्रह्म में सर्वज्ञत्व सर्ववित्त्व को बतलाते हैं-'**यः सर्वज्ञः**' इत्यादि । जो

पूर्वोक्त लक्षण भूतयोनि सर्वज्ञ है अर्थात् सभी स्थूल सूक्ष्म स्वरूप पदार्थ जात को सामान्य रूपसे व्यापक धर्म द्वारा जानते हैं वह सब पूर्वोक्त पदार्थ ज़ात को विशेष रूपसे प्रातिस्विक रूपसे जानते हैं वह सर्ववित् है। अर्थात् स्वरूप द्वारा तथा प्रकार रूपसे सर्वविषयक ज्ञानवान् भूतयोनि पद निर्दिष्ट अक्षर पुरुष परमेश्वर श्रीरामजी ही हैं। जिस अक्षर भूतयोनि का तप ज्ञानमय है अर्थात् संकल्परूप ही है। परमेश्वर का जगदुत्पादन कार्य जब कर्तव्य होता है उसे संकल्प व्यतिरिक्त कोई भी अन्य वस्तु की आवश्यकता नहीं होती है। उस संकल्पवान् सृष्ट्युन्मुख परमेश्वर अक्षररूप ब्रह्म से यह अव्याकृत नामरूप वाला प्रधान उत्पन्न होता है। उस प्रधान का नामरूप किसप्रकार का है ? इस जिज्ञासा के उत्तर में कहते हैं-**'अन्नं च'** इति। भोग्यभूत पृथिव्या द्याकार ही रूप है। तथा पृथिवी यह नाम उपलक्षण है भोक्ता भोग स्थान कर्मि प्रभृति का जो पूर्वमन्त्र में कहा गया है। एवं पूर्व मन्त्रोक्त भूतयोनि का अनुवाद करके अक्षर ब्रह्म में सर्वभूत जनकत्व का समर्थन किया जाता है ॥९॥

卐 इति भगवद्रामानन्दाचार्यप्रणीतानन्दभाष्य प्रकाशे
प्रथममुण्डके प्रथमः खण्डः 卐

## 卐 अथ प्रथममुण्डके द्वितीयः खण्डः 卐

तदेतत्सत्यं मन्त्रेषु कर्माणि कवयो यान्य पश्यंस्तानि त्रेतायां बहुधा संततानि । तान्याः चरथ नियतं सत्यकामा एष वः पन्थाः सुकृतस्य लोके ॥१॥

शास्त्र प्रसिद्ध परब्रह्म सत्य है कविलोग जिन कर्मों को मन्त्रों में देखे थे वे कर्म त्रेता के गार्हपत्यादि अग्नि में बहुत प्रकार से विस्तृत हैं हे सत्यकामा ? परब्रह्म श्रीरामजी की अभिलाषा वालों उन कर्मों को नियत रूपसे आचरण करो पुण्य के फलस्वरूप लोक में तुम सबों के हेतु यही आगे का सुगम मार्ग है ॥१॥

तत् परविद्याप्राप्यतया निर्दिष्टम् । एतत् सर्वज्ञत्वेन सर्ववित्त्वेन च निर्दिष्टमक्षरं ब्रह्म सत्यम् । स्वरूपकृतेन स्वभावकृतेन विकारेण रहितत्वान्नित्यमित्यर्थः । स्वर्गादिप्राप्त्यर्थतया वेदविहितान्यपि कर्माणि यदि फलाभिसन्धिं वर्जयित्वा क्रियन्ते तदा तेषामपि परमात्मसाक्षात्कारद्वारा परब्रह्मप्राप्तिहेतुत्वं भवतीति दर्शयति- मन्त्रेषु कर्माणीति । मन्त्रेषु ऋग्वेदादिरूपेषु यानि कर्माणि अग्निहोत्रादीनि कवयः क्रान्तदर्शिनोऽतीन्द्रियवस्तुसाक्षात्करणक्षमा वसिष्ठविश्वामित्रादयोऽपश्यन् दृष्टवन्तः तानि कर्माणि त्रेतायां गार्हपत्याग्नि दक्षिणाग्न्याहवनीयाग्निरूपाग्नित्रयेऽग्नित्रयस्य संयोगः

त्रेता तस्यां त्रेतायामिति व्युत्पत्तेः । यद्वा त्रेतायुगे बहुधा बहुभिः प्रकारैरधिकारिभेदेन फलभेदेन चेत्यर्थः । संततानि कर्मकाण्डिभिर्यावज्जीवं क्रियमाणतया प्रवृत्तानि । विस्तृतानीत्येतत् । तानि कर्माणि आचरथ कुरुत । यूयम् । के इत्यत्राह सत्यकामाः सत्यं परंब्रह्म कामयन्ते इति सत्यकामा इतरफलकामनावर्जनपूर्वकं परंब्रह्ममात्रप्राप्तुं कामयमाना भवन्तः शिष्या इत्यर्थः । स्वर्गादिक्षुद्रफलाभिष्वाङ्गराहित्येन क्रियमाणानि तानि कर्माणि बन्धकारकाणि न भवन्ति तस्मात् सत्यकामनया तदाचरणेऽपि परब्रह्मप्राप्तिः परम्परया स्यादेवेति तानि न त्याज्यानीतिभावः । सुकृतस्य लोके सुकृतसाध्येऽत्र लोकेऽमुष्मिन् स्वर्गादिलोके वा एष सत्यशब्दोदितः परमात्मैव वो युष्माकं कर्मिणां पन्थाः पथप्रदर्शकः प्रापको वा भवदभीप्सितस्यार्थस्य । यदि भवद्भिः सत्य इष्यते तदा सत्यस्यैव प्रापकः सत्यशब्दितः परमात्म यदि स्वर्गादिसुखरूपमन्यदिष्यते तदा तस्यापि प्रापकः स एव । कर्मणां स्वातन्त्रेण फलजनकत्वादितिभावः ॥१॥

'तदेत्सत्यमित्यादि' तत् वह जिसे पराविद्या से प्राप्य होने के योग्य बतलाया गया है । एतत् यही अर्थात् सर्वज्ञ सर्ववित् रूपसे निर्दिश्यमान परमेश्वर अक्षर

ब्रह्मरूप से निर्दिश्यमान हुए हैं वही परमेश्वर सत्य है। अर्थात् स्वभावकृत सकल विकार से रहित होने के कारण सर्वथा नित्य है। स्वर्गादि तत्तत् फल को उद्देश्य करके वेद विहित जो ज्योतिष्टोम वाजपेयादिक कर्म हैं उन कर्मों की फलेच्छा त्यागपूर्वक यदि संपादन किया जाय तो अन्यार्थक भी उन कर्म से परब्रह्म साक्षात्कार द्वारा परमेश्वर प्राप्ति में काम्याग्निहोत्रादिक भी समर्थ होते हैं-इस बात को बतलाने के लिये कहते हैं-'**कर्माणीत्यादि**' मन्त्रों में ऋग्वेदादिकों में जो कुछ काम्याग्निहोत्रादिक कर्मों को कबिलोग क्रान्तदर्शी अतीन्द्रिय पदार्थ का भी साक्षात्कार करने में समर्थ श्रीवशिष्ठजी एवं श्रीविश्वामित्र प्रभृतिक कवियों ने देखा साक्षात्कार किया। वे सबकर्म त्रेता में अर्थात् गार्हपत्याग्नि दक्षिणाग्नि और आहवनीयरूप अग्नित्रितय में अग्नित्रय का जो संयोग उसे त्रेता कहते हैं उस त्रेता में। अथवा त्रेतायुग में वे सब कर्म। बहुधा अनेक प्रकार से अधिकारी भेद से अथवा फल भेद से संत तथा अर्थात् कर्मकाण्डियों से जीवन पर्यन्त संपाद्यमान होने से प्रवृत्त था अति विस्तृत रूपसे चलता था। आप लोग उन कर्मों का आचरण करें जो आप सत्यकाम हों। सत्य परमात्मा तादृश परमात्मा का कामनाशील उपासक इतर फल कामना

वर्जनपूर्वक मात्र परब्रह्म की कामना करनेवाले आप लोगों से फलाभिसंधि रहित हो करके क्रियमाण जो कर्म वह बंधन प्रयोजक नहीं होते हैं। तस्मात् सत्य परब्रह्म की कामना से तादृश कर्म का आचरण करने पर भी परंपरया भगवत्प्राप्ति अवश्यमेव होगी। अतः एतादृश कर्म का परित्याग नहीं करना चाहिये। **'सुकृतस्य लोके'** सुकृत साध्य इस लोक में अथवा स्वर्गादिक लोक में यही सत्य शब्द वाच्य परमात्मा ही आप कर्मकारियों का पथप्रदर्शक है अथवा अभिमत फल का प्रापक है। यदि आपलोग सत्य को चाहते हैं तब सत्य पदवाच्य परमात्मा आपके सत्य का प्रापक है। अथ कदाचित् आप कदाचित् स्वर्गादिकफल को चाहते हों तो उसके भी प्रापक परमात्मा हैं। क्योंकि कर्मफल के प्रापक स्वतन्त्र परमात्मा श्रीरामजी ही हैं ॥१॥

**यदा लेलायते ह्यर्चिः समिद्धे हव्यवाहने। तदाज्यभागावन्तरेणाहुतीः प्रतिपादयेच्छ्रद्धया हुतम् ॥२॥**

हविष्य वाहक अग्नि के प्रज्वलित होने पर ही जब ज्वाला लप लपाने लगती है तब आज्य भाग के वीच श्रद्धा के साथ आहुतियां प्रदान करे ॥२॥

फलाभिसंधिपूर्वककर्मानुष्ठानं यदि कामचारेण क्रियते तदानर्थः । शास्त्रानुसारेण क्रियते तदा हिरण्यगर्भलोकपर्यन्तलोकप्राप्तिः पुनरावृत्तिफला भवतीति प्रदर्शयति-यदेति । हव्यवाहने वैतानिके वह्नौ समिद्ध आज्यकाष्ठादिभिरिन्धनैः प्रक्षिप्तैः दीप्यमाने सति यदा यस्मिन् काले अर्चिर्ज्वाला लेलायते अतिशयेन चलति तदा तस्मिन् काल आज्यभागावन्तरेण आज्यभागयोर्मध्य आहुतीः प्रतिपादयेदाहुतिक्षेपं कुर्यात् । दर्शपूर्णमासप्रकरण आहवनीयाग्नेर्दक्षिणपार्श्व आज्येन 'अग्नये स्वाहा' इत्येवमुच्चार्य यागः प्रथमं क्रियते, ततः उत्तरपार्श्व आज्येनैव 'सोमाय स्वाहा' इत्येवमुच्चार्य हूयते, इमावेवाज्यभागौ प्रोच्येते आज्यद्रव्यकर्मकयागरूपत्वादनयोः । आज्यं तु यजमानपत्न्यवेक्षितं घृतमेवोच्यते, 'पत्न्यवेक्षितमाज्यमि'ति तल्लक्षणात् । तयोराज्यभागयोर्मध्येऽपरे यागा अनुष्ठीयन्ते तदावापस्थानमित्युच्यते । तदेवात्र अन्तरेणेति श्रुतिस्थशब्देन विवक्षितम् । तत्रैवाहुतिप्रतिपादनं शास्त्रविहितं भवति । अन्यथाऽयथावद्हुतमित्युच्यत इति भावः ॥२॥

फल प्राप्ति की इच्छापूर्वक यदि काम्य यागादिक कर्म को करता है तो वह कर्म अनर्थ फल को देता है

अर्थात् कर्म करने से स्वर्गादिक प्राप्त होता है तथा फलोपभोग हो जाने पर पुनः पतनरूप अनिष्ट मिलता है। अथवा यदि काम्यक कर्म विधिशास्त्र का अतिक्रमण करके स्वेच्छाचारिता से किया जाय तब अनर्थ की प्राप्ति होती है। और उसी को यदि शास्त्रीय प्रक्रिया के अनुसार किया जाय तब वह कर्म हिरण्य गर्भलोक पर्यन्त लोक का प्रापक होता है परन्तु फल भोग के अवसान में पुनरावृत्ति फलक होता है। इस बात को बतलाने के लिये कहते हैं-**'यदा लेलायते'** इत्यादि। आज्य काष्ठादिक का प्रक्षेप करने पर जब याज्ञिक अग्नि अत्यन्त प्रदीप्त हो जाती है और जब उस वह्नि में .अर्चि. अग्नि की ज्वाला अतिशयेन चलने लगती है। उस समय में आज्य भाग के मध्य में दो आहुतियों का प्रक्षेप करें। दर्शपूर्णमास याग के प्रकरण में आहवनी याग्नि के दक्षिण पार्श्व में आज्य के द्वारा-**'अग्नये स्वाहा'** इस मन्त्र का उच्चारण करके प्रथमतः याग किया जाता है। उसके बाद आहवनीय अग्नि के उत्तर पार्श्व में आज्य के द्वारा ही **'सोमाय स्वाहा'** ऐसा मन्त्र का उच्चारण करके आहुति दी जाती है, इसी को आज्यभागाहुति कहते हैं क्योंकि यह दोनों याग आज्यरूप द्रव्य कर्मक हैं। यजमान पत्नी से अवेक्षित

घृत को ही आज्य कहते हैं-**'पत्न्यवेक्षितमाज्यम्'** यही उसका लक्षण है । उन दो आज्य भागों के मध्य में अन्यहुतत्याग भी अनुष्ठित होते हैं उसे आवाप स्थान कहते हैं। यही वस्तु यहाँ श्रुति घटक **'अन्तरेण'** इस शब्द से विवक्षित है । उसी में आहुति का प्रतिपादन शास्त्र विहित है । अन्यथा-**'अयथावत्हुत** कहलाता है । इस याग तथा आहुति प्रक्रिया का विशेष विवरण मीमांसा में देखिये ॥२॥

**यस्याग्निहोत्रमदर्शमपौर्णमासमचातुर्मास्यम नाग्रयणमतिथिवर्जितं च । अहुतमवैश्वदेवम विधना हुतमासप्तमाँस्तस्य लोकान् हिनस्ति ३**

जिस मानव का अग्निहोत्र अमावास्या सम्बन्धी दर्शयाग से हीन है पूर्णिमा को सम्पन्न होनेवाली पौर्णमास याज्ञ से हीन है चातुर्मास याग से हीन है शरदकालीन आग्रयण कर्म से हीन है तथा अतिथि सेवा से विहीन है अग्निहोत्र से रहित तथा बलिवैश्वदेव कर्म से विरहित एवं श्रद्धा के विना विधिरहित हवन कर्म है वह उस हवन कर्ता के पृथिवी से सत्यलोक तक सातों लोकों को या पिता पितामह प्रपितामह एवं पुत्र पौत्र प्रपौत्र तथा अपना सात जनों के सुकृत को नाश कर देता है ॥३॥

**शास्त्रदृष्टेन विधिना कृतमपि हवनं यद्यवश्यकर्तव्य तया विहितेतरकर्मरहितं भवति तदा तदहुतमिव भवति अनर्थं च प्रयच्छतीत्याह-यस्येति । यस्य पुंसोऽग्निहोत्रं**

कर्म यथाविधिकृतमपि भवति परन्तु तत्र यदि दर्श पौर्णमासरूपमङ्गकर्म नानुष्ठीयते, अनाग्रयणं शरत्काले नवान्नग्रहणतः पूर्वभवान्नग्रहणार्थं क्रियमाणो याग आग्रयणमित्युच्यते । तस्यानुष्ठानं यदि न क्रियते । अतिथिवर्जितं प्रतिदिनमतिथिसत्कारोऽपि शास्त्रविहित एव स यदि न क्रियते । अहुतम् न हूयते यदि स्वयं तदा औपासनहोमरहितमित्येतत् । अवैश्वदेवं वैश्वदेव यागो यदि न क्रियते । अविधिनाहुतम् स्वयं हूयते परन्तु शास्त्रानुसारेण न तदा । अश्रद्धया हुतम् शास्त्रोक्तफलसाधकत्वस्य कर्मसु विश्वासरहिततया यदि क्रियते । एतादृशं दर्शपौर्णमासादिविधुरमग्निहोत्रं कर्म तस्य कर्मकर्तुः पुंसः आसप्तमान् सप्तपुरुषपर्यन्तान् लोकान् हिनस्ति । त्रयः पूर्वे पितृपितामहप्रपितामहाः त्रयश्चोत्तरे पुत्रपौत्रप्रपौत्राः स्वयमेको एतेषां सप्तानामपि सुकृतस्य फलं न भवति । अनर्थश्च नानाविधो भवति-एतत्तात्पर्येण हिनस्तीत्युक्तम् । यद्वा भूरादयः सत्यलोकपर्यन्ता सप्तलोकाः तेषां हिंसाऽप्राप्तिरित्यर्थः । अतः सर्वैरङ्गैर्विशिष्टं कर्म श्रद्धया शास्त्रदृष्टविधिना च कार्यं तथा सति न सप्तलोकहिंसेतिभावः ॥३॥

शास्त्र प्रदर्शित विधि से संपादित भी हवन यदि अवश्य कर्तव्यता रूपसे विहित जो इतर कर्म तादृश कर्म

से रहित हो जाता है तब वह प्रधान हवन अहुत ही हो जाता है तथा अनर्थ को देनेवाला होता है इस बात को बतलाते हैं-**'यस्याग्निहोत्रमित्यादि'** जिस आहिताग्नि पुरुष का अग्निहोत्र कर्म विधिपूर्वक संपादित भी हुआ परन्तु उसमें यदि दर्शपौर्णमासरूप अंग कर्म का अनुष्ठान नहीं किया गया। तथा चातुर्मास्य कर्म रहित हुआ। एवं नवीनशालि ग्रहण करने के लिये जो यज्ञ किया जाता है उसे आग्रयण कहते हैं उससे रहित हो। तथा अतिथि वर्जित हो। प्रति दिन अतिथि सत्कार भी शास्त्र विहित है परन्तु अतिथि सेवा वर्जित है। एवं अहुत स्वयं हुत नहीं किया। एवं वैश्वदेव कर्मरहित हो तथा अविधि पूर्वक हवन किया। तथा श्रद्धा विरहित हो करके हवन करता है। एतादृश दर्शपौर्णमास से रहित जो अग्निहोत्र कर्म है वह तादृश अग्निहोत्र करनेवाले पुरुष सप्तम पुरुष पर्यन्त लोक का नाशकरदेता है। यजमान का पिता पितामह प्रपितामह ये तीन तथा पुत्र पौत्र प्रपौत्र ये तीन छ स्वयं सात इन सबके सुकृत का फल विनष्ट हो जाता है और अनेक प्रकार का अनर्थ भी होता है। इसी तात्पर्य से हिनस्ति का प्रयोग किया है। अथवा भूरादिक सातों लोक की प्राप्ति नहीं होती है। अतः सब अंगों से विशिष्ट कर्म को शास्त्र विधि तथा श्रद्धापूर्वक करना

चाहिये । तब सप्त लोकों की हिंसा नहीं होती है ॥३॥

**काली कराली च मनोजवा च सुलोहिता या च सुधूम्रवर्णा । स्फुलिङ्गिनी विश्वरुची च देवी लेलायमाना इति सप्त जिह्वाः ॥४॥**

काली-कृष्ण रंगवाली कराली अति उग्ररूपा एवं मनोजवा-मन के गति से चलने वाली तथा सुलोहिता सुन्दर लाल वाली और सुधूम्रवर्णा-अच्छे धूये से वर्णवाली स्फुलिङ्गिनी-छोटे चिनगारियां वाली एवं विश्वरुची-सब सुन्दरतावाली तथा देवी ये सात अग्नि की लपलपाती जिह्वाएं हैं ॥४॥

**विशेषविधिप्रतिपादनाय वह्नेः सप्तजिह्वा नामोच्चारेण प्रदर्शयतिकालीति । कालीकरालीत्यादयो लेलायमानाः प्रचलन्त्यः सप्तजिह्वा अर्चिर्विशेषा वह्नेः सन्ति । देवीतिपदं विश्वरुच्याः विशेषणम् । सप्तानां जिह्वानां वा विशेषणं द्रष्टव्यम् ॥४॥**

विधि विशेष का प्रतिपादन करनें के लिये वह्नि की सात जिह्वाओं को नामग्रहणपूर्वक बतलाते हैं-**'कालीत्यादि'** काली कराली इत्यादिक चलायमान सात जिह्वा अथवा सात प्रकार के अर्चि विशेष वह्नि के होते हैं । देवी यह विशेषण विश्वरुची जिह्वा का है अथवा सातों जिह्वा का विशेषण है ऐसा जानना चाहिये ॥४॥

**एतेषु यश्चरते भ्राजमानेषु यथाकालं चा**

हुतयो ह्याददायन् । तं नयन्त्येताः सूर्यस्य रश्मयो यत्र देवानां पतिरेकोधिवासः ॥५॥

जो साधक इन अग्नि जिह्वा के प्रदीप्त होने पर ठीक समय पर ही हविष्य को सम्पादन कर अग्निहोत्र कर्म सम्पन्न करता है तो ये आहुतियां सूर्य की रश्मियां बनकर जहां देवताओं के प्रधान स्वामी निवास करते हैं वहां उस अग्निहोत्री को ले जाते हैं ॥५॥

एतेषु वह्निजिह्वाप्रभेदेषु कालीत्यादिषु भ्राजमानेषु इन्धनसमिद्धे वह्नौ प्रचलत्सु, यथाकालं विहितकालातिक्रमणं विना यो यजमानश्चरतेऽग्निहोत्रं कर्माचरति । आददायन् होमीयं द्रव्यं तिलतण्डुलादिकं गृहीत्वेत्यर्थः । तं यजमानमेता यजमानेन विवर्त्तिता आहुतयः सूर्यस्यादित्यस्य रश्मयः किरणा भूत्वा सूर्यरश्मिद्वारेत्यर्थः । जयन्ति प्रापयन्ति । कुत्रेत्याशङ्कायामाह-यत्र यस्मिन् सत्यलोकाख्ये लोकविशेषे । एकः स्वर्गादिलोकेषु सर्वोपरिवास्तव्यतयाऽसमानो देवानामिन्द्रादीनां पतिः स्वामी अधिवसतीत्यधिवासो वसतीत्यर्थः । हिरण्यगर्भो यत्र वसति तस्मिन् सत्यलोके यजमानमाहुतयः प्रापयन्तीतिभावः ॥५॥

काली कराली प्रभृतिक जिह्वा प्रभेदों में तथा भ्राजमान में अर्थात् इन्धनोद्दीपित वह्नि में चलते हुए में यथाकाल अर्थात् विहित काल के अतिक्रमण के बिना

जो यजमान अग्निहोत्र कर्म का होमीय तिल तण्डुलादिक द्रव्य का ग्रहण करके संपादन करता है। उस यजमान को यजमान से दी हुई ये आहुतियां सूर्य के किरणरूप हो करके ले जाते हैं। किरण द्वारा ये कहां ले जाते हैं इस जिज्ञासा के उत्तर में कहते हैं-'**यत्रेत्यादि**' जिस सत्यलोक में एक अर्थात् स्वर्गादिक लोकों में सबसे ऊपर निवास करने के कारण अनन्य सदृश इन्द्रादि देवों का पति स्वामी निवास करते हैं। अर्थात् हिरण्यगर्भ जिस सत्यलोक में निवास करते हैं उस सत्यलोक में यजमान को सूर्यकिरण द्वारा ये आहुतियां ले जाती हैं ऐसा मन्त्र का अभिप्राय है ॥५॥

**एह्येहीति तमाहुतयः सुवर्चसः सूर्यस्य रश्मिभिर्यजमानं वहन्ति । प्रियां वाचमभि वदन्त्योऽर्चयन्त्य एष वः पुण्यः सुकृतो ब्रह्मलोकः ॥६॥**

सुन्दर प्रकाशवाली आहुतियां आइये आइये यह आपके सुकृत कर्म से प्राप्त पुण्य ब्रह्मा का लोक है इसप्रकार प्रिय वाणी को वार-वार उच्चारण करती हुई एवं आदर के साथ पूजा करती हुई उस अग्निहोत्री यजमान को सूर्य की किरणों द्वारा ले जाती या पहूँचा देती हैं ॥६॥

**आहुतयो यजमानं हिरण्यगर्भलोकं नयन्तीत्युक्तं**

**तत् कथं नयन्तीत्याह-सूर्यस्य रश्मिभिः किरणैः सुवर्चसः सूर्यकिरणसम्पर्केण तेजस्विनो भूत्वा आहुतय एहि एहि आगच्छ आगच्छेति तं यजमानमाह्वयन्त्य एष वः सुकृतो युस्माकं सुकृतसाध्यो लोको हिरण्यगर्भलोकः सत्यलोकाख्यो वर्तते । भवदीय एवायं लोक इत्याकारां प्रियां मनोरमां वाचं वाक्यम् । अभिवदन्त्योऽभित उच्चारयन्त्योर्चयन्त्यः तत्र तत्र प्रदेशे समुपलब्धैरुपकरणैर्मन्दारमालादिभिः पूजयन्त्यः तं यजमानं वहन्ति ब्रह्मलोकं प्रापयन्तीत्यर्थः ।।६।।**

**'एह्येहीत्यादि'** विधिपूर्वक यजमान से दी हुई आहुतियां यजमान को हिरण्यगर्भ लोक में ले जाते हैं ऐसा पूर्वमन्त्र में कहा है तो किसप्रकार से ले जाते हैं ? इस जिज्ञासा के उत्तर में कहते हैं-**'सूर्यस्य रश्मिभिः'** इत्यादि । सूर्य की रश्मि किरण के द्वारा तथा सूर्य किरण के संपर्क से अत्यन्त तेजो विशिष्ट हो करके वे आहुतियां **एहि-एहि** आइये आइये ऐसा कहते हुए उस यजमान को ले जाती हैं । और ब्रह्मलोक समीपस्थ हो करके कहती है यह आपका सुकृत अर्थात् आपके पुण्यों से सिद्ध होनेवाला लोक हिरण्यगर्भलोक है जिसे सत्य लोक कहते हैं । आपका ही यह लोक है एतादृश प्रिय मनोरम वाक्य को बोलती हुई तथा तत्तत्प्रदेशों में

समुपलब्ध मन्दार मालादिकों से पूजित करती हुई उस यजमान को ब्रह्मलोक में ले जाती हैं ॥६॥

**प्लवा ह्येते अदृढा यज्ञरूपा अष्टादशोक्तमवरं येषु कर्म । एतच्छ्रेयो येऽभिनन्दन्ति मूढा जरामृत्युं ते पुनरेवापि यन्ति ॥७॥**

ये अठारह जनों से युक्त यज्ञरूप नौकायें दृढ नहीं है क्योंकि उनमें निम्न कक्षा का श्रीरामोपासना हीन कर्म ही निरूपित है । इस अश्रेष्ठ कर्म को कल्याणकारी जानकर जो मूढ व्यक्ति इसका अभिनन्दन करते हैं वे मूढ व्यक्ति पुनः जरा तथा मृत्यु को प्राप्त करते हैं इसमें संसय नहीं ॥७॥

ब्रह्मलोकपर्यन्तफलकमपि कर्म ज्ञानविधुरं यदि तदा दुःखमूलमेव भवति । एतत्फलमपि क्षयिष्णुतया न काम्यमिति दर्शयति प्लवा ह्येते-समुद्रतरणोपयोगितया दृढा नौका आश्रयणीया भवति यथा तथा संसारसागरतरणोपयोगितया केचन कर्मिणो यागादय एव उपाददते तन्न युक्तम् । तत्र युक्तिमाह-एते अग्निहोत्रादयो यज्ञरूपा यज्ञाकाराः प्लवाः प्लवा इवेति-प्लवाः । तरणोपयोगित्वात् प्लवयागयोः सादृश्यम् । परन्तु अदृढा जीर्णनौकासदृशाः । नहि जीर्णनौकया सागरो महाविशालोऽगाधसलिलसंभृतः केन तरीतुं शक्यते तथैव संसारसागरोऽपि यज्ञरूपनौकासाधनेन

न शक्यते केनापितरितुम् । ते यज्ञरूपाः कतीत्य त्राह-अष्टादश । लाक्षणिकमेतत् । षोडशयाज्ञिका एका यजमानपत्नी, एकश्च स्वयं यजमानो मिलित्वाष्टादश संस्थापका एते भवन्ति । एते च संभूयैव यागादि साधयन्ति । अतो ऽष्टादशसंख्याकयाज्ञिकादिसाध्यत्वाद् यज्ञा अपि अष्टादशेत्युक्ताः । एतेषु अष्टादशसु यागेषु क्रियमाणं हि कर्म अवरमपकृष्टमित्युक्तम् । कर्मयाथार्थ्यज्ञातृभिरिति शेषः । कर्मणां चावरत्वं ज्ञानविधुरत्वात्, फलकामनापूर्वकविहितत्वात्, क्षीयमाण स्वर्गादिरूपावरफलसाधनत्वाच्च । ये मूढा अविवेकिन एतत् कर्म श्रेयः श्रेयः कारणमिति मत्वा अभिनन्दन्ति हृष्टा भवन्ति ते मूढा जरामृत्युं जरा वार्धक्यं-मृत्युः शरीरप्राणवियोगः तदुभयं पुनरपि यावत् पुण्यक्षयं स्वर्गलोके स्थित्वा क्षीणे पुण्ये पुनरेव पौनः पुन्येनैव अपियन्ति प्राप्नुवन्ति ॥७॥

ब्रह्मलोक पर्यन्त फल को देनेवाला भी कर्म यदि ज्ञान रहित हो तो वह भी दुःख का ही कारण होता है। एतादृश कर्म का फल भी क्षयशील है। अतः इसकी कामना भी नहीं करनी चाहिये। इस बात को बतलाने के लिये कहते हैं-**'प्लवा ह्येते'** इत्यादि । समुद्रादि संतरण में उपयोगी दृढ नौका उपादेय होती है जिस

तरह उसी तरह संसार सागर के उत्तरण में उपयोगी कर्म को समक्ष करके कोई-कोई याज्ञिक लोग यागादि कर्म का ही अनुष्ठान करते हैं वह ठीक नहीं है। इसमें युक्ति बतलाते हैं। ये अग्निहोत्रादिक यज्ञरूप प्लव नौका के समान प्लव है तरण में उपयोगी होने से प्लव तथा याग में समानता है परन्तु यज्ञादिक कर्म अदृढ हैं जीर्ण नौका के समान हैं। जीर्ण नौका द्वारा अगाध जल से पूरित महाविशाल सागर को जिस तरह पार करना अशक्य है उसी तरह संसाररूप सागर भी यज्ञरूप नौका साधन से पार करने के योग्य नहीं है। वे यज्ञरूप कितने हैं ? इस जिज्ञासा के उत्तर में कहते हैं- **'अष्टादश'** अठारह हैं। ये लाक्षणिक हैं। इसमें सोलह याज्ञिक होते हैं एक यजमान पत्नी और एक यजमान ये सब मिल करके अठारह संस्थापक होते हैं। ये सब मिलकर के यज्ञ को संपादित करते हैं। अतः अष्टादश संख्याक याज्ञिकों से साध्य होने के कारण याग को भी अष्टादश कहा गया है। इन अष्टादश प्रकारक यज्ञों में क्रियमाण जो कर्म हैं उसे यज्ञ की यथार्थता को जानने वालों ने अवर छोटा-अर्थात् अपकृष्ट कर्म कहा है। कर्म में ज्ञान रहितत्व ही अवरत्व है क्योंकि फल कामना पूर्वक विहित है इसलिये। और क्षीयमाण जो

स्वर्गादिरूप अवरफल उसका साधन है इसलिये ये कर्म अवर हैं । जो मूढ अविवेकी लोग इस कर्म को यह श्रेयस का कारण है यह मान करके अतिप्रसन्न होते हैं वे अविवेकी लोग जरामृत्यु को जरा वृद्धावस्था मरण शरीर प्राण का वियोग उसे बारंवार प्राप्त करते हैं जहां तक पुण्यकर्म रहता है तावत् काल पर्यन्त स्वर्ग में निवास करके पुनः इस लोक को प्राप्त करते हैं ।।७।।

**अविद्यायामन्तरे वर्त्तमानाः स्वयंधीराः पंडितंमन्यमानाः । जङ्घन्यमानाः परियन्ति मूढा अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः ।।८।।**

सकाम कर्मरूप अविद्या के वीच रहनेवाले स्वयं को धीर एवं पण्डित मानने वाले मूढ-विवेक रहित व्यक्ति पुनः पुनः जन्म मृत्यु आदि व्यथा को अनुभव करते रहते हैं जिसप्रकार अन्धे से ले जाये जाते अन्धा वार-वार विपत्तिग्रस्त होता है यानी वे जन्म मृत्यु के चक्र में घूमते रहते हैं ।।८।।

अविद्यायामन्तरे अविद्यामध्ये वर्तमानाः । अविवेकप्रधाना इत्यर्थः । स्वयं धीराः स्वमेव बुद्धिमन्तो गुरूपदेशादिकमन्तरेणैव आत्मनैवात्मानं बहुबुद्धिमन्तं जानाना इत्यर्थः । पण्डितंमन्यमाना ऊहापोहक्षमा शास्त्रविषयिणी बुद्धिः पण्डा सा संजाताऽस्येति पण्डितः तमात्मानं मन्यन्ते ये तादृशाः । यत् किमपि वेदितव्यं

तत्सर्वं विहितमेव मया, नास्ति च तादृशं किमपि तत्वं यदूहापोहाभ्यां मया निश्चेतुमनर्हं भवेद् इत्येतादृशाभि मानवन्त इत्येतत् । जङ्घन्यमाना जन्मजरारोगादिभि-रनर्थव्रातैर्नानाविधैः पौनःपुन्येन हन्यमाना व्याकुली क्रियमाणाः । अन्धेन दर्शनशक्तिविहीनेन चक्षुरिन्द्रियर हितेनेति यावत् । नीयमाना हस्तग्राहेण मार्गसूचनेन वा कुतश्चिद्देशादपरदेशं प्रति प्राप्यमाणाः । अन्धा स्वय मपि दर्शनशक्तिविरहिता यथा गर्तादिषु पतन्ति उच्चाव चभूमिषु स्खलन्ति च तथैव भूता यथोक्तविशेष णविशिष्टा अविवेकवन्ता जनाः । परियन्ति इतस्ततः संसारकान्तारे परिभ्रमन्ति श्ववराहादिषु नानायोनिषु जन्ममरणभाजो भवन्तीतिभावः ॥८॥

'अविद्यायामन्तरे' इत्यादि । अविद्या के मध्य में वर्तमान अर्थात् अविवेक प्रधानक व्यक्ति । तथा स्वयं धीरः स्वयमेव बुद्धिमान् अर्थात् शास्त्र गुरूपदेशादिक के विना अपने से ही अपने को बहुत बुद्धिमान् जानने वाला व्यक्ति । तथा अपने को पण्डित मानने वाला ऊहापोह में समर्थ शास्त्र विषयक बुद्धि को कहते हैं पण्डा, वह है जिसे उसे पण्डित कहते हैं एतादृश अपने को जो माने उसे पण्डितंमन्य कहते हैं । अर्थात् जो कुछ वेदितव्य है उन सब को मैंने किया, एतादृश कोई तत्व

नहीं है जिसका मैं ऊहापोह से निश्चय करने के योग्य नहीं होऊं इत्याकारक अभिमानवान् । **जङ्घन्यमान** जन्म जरा रोगादिक अनेक प्रकारक अनर्थ समुदायों से बारंवार व्याकुलित होता हुआ । अन्धों से अर्थात् चक्षुरादि इन्द्रियों से रहित व्यक्ति द्वारा नीयमान हस्तग्रहणपूर्वक यद्वा मार्गदर्शन द्वारा एक देश से अन्य देश में ले जानेवाला । जिस तरह स्वयं दर्शन शक्ति रहित एक अन्ध गर्त में स्वयं पडता है ऊँच नीच स्थल में लड खडाता है उसी तरह यथोक्त विशेषण विशिष्ट अविवेकी व्यक्ति इधर उधर संसाररूप वन में [illegible] घूमता हुआ अनेक योनियों में जरामरणादि का भागी होता रहता है ॥८॥

**अविद्यायां बहुधा वर्त्तमाना वयं कृतार्था इत्यभिमन्यन्ति बालाः । यत्कर्मिणो न प्रवेदयन्ति रागात्तेनातुराः क्षीणलोकाश्च्यवन्ते ।९।**

अविद्या-प्रकृति मण्डल में देव मनुष्य प्रभृति अनेक योनियों में वर्तमान अल्प ज्ञान वाले पर हम ही कृतार्थ हैं ऐसा अभिमान करते हैं कारण यह कि वे सकाम कर्म सम्पादक जन स्वर्गादि फल प्राप्ति की इच्छा से परतत्त्व को नहीं जान पाते हैं अतः स्वर्गादि लोगों के क्षीण हो जाने पर व्याकुल हो पुनः पुनः स्वर्गादि से अधः पतित होते हैं ॥९॥

**वालाः परमतत्त्वज्ञानशून्या अविद्यायां प्रकृति शब्दितायामेव बहुधा बहुभिः प्रकारैर्देवत्वम-**

नुष्यत्वादिभिर्वर्तमाना देवमनुष्यत्वाद्यभिमानवत्तया वर्तमानाः । अविद्यासमावृता इति यावत् । अत्यल्पास्थिरस्वर्गादिफलसाधनानुष्ठानेनैव वयमेव कृतार्थाः कृतो निश्चितो निष्पादितो वार्थः कर्त्तव्यार्थो यैस्तादृशा वयमेव नान्य इति अभिमन्यन्ति अभिमानशालिनोभवन्ति । कर्मिणः कर्मानुष्ठानमात्रतत्पराः ते बाला यद् यस्मात् कारणाद् रागात् कर्मफलानुरागवशान्न प्रवेदयन्ति तत्वं न जानन्ति । कर्मणां कीदृशः स्वभावः, कीदृशश्च कर्तुः स्वभावः, कर्माराध्यस्य परमात्मनश्च कः स्वभाव इति सम्यक्तया न जानन्ति तेन हेतुना तत्वज्ञानवैधुर्येणेति यावत् । क्षीणलोकाः पुण्यक्षये सति स्वर्गादिर्लोकः क्षीणो विनष्टो येषां तादृशा आतुरा व्याकुलाः सन्तश्च्यवन्ते पतन्ति मृत्युलोकं विशन्ति ॥९॥

'अविद्यायां बहुधेत्यादि' बालक परमतत्वज्ञान रहित व्यक्ति प्रकृति शब्दित अविद्या में देव मनुष्यादि अनेक प्रकार से विद्यमान अर्थात् अविद्या से आच्छादित हो करके । अत्यल्प अस्थिर स्वर्गादिरूप जो फल उसे साधनानुष्ठान से अपने को कृतार्थ मानते हुए अत्यन्त अभिमान युक्त होते हैं । कर्म के अनुष्ठानमात्र में तत्पर वे बालक लोग जिस कारण से कर्मफल के अनुराग से

वास्तविक तत्व को नहीं जानते हैं अर्थात् कर्म का क्या स्वभाव है कर्म करनेवालों का क्या स्वभाव है और कर्माराध्य जो परमात्मा उनका क्या स्वभाव है इस बात को समीचीन रूपसे नहीं जानते हैं इस तत्वज्ञान के अभावरूप कारण से । क्षीण लोक हो करके अर्थात् पुण्य के क्षय हो जाने पर स्वर्गादिलोकरूप फल विनष्ट हो गया है जिनका एतादृश तथा आतुर व्याकुल हो करके स्वर्ग से नीचे मृत्युलोक में आकर के गिरते हैं । अर्थात् स्वर्गफलावसान के बाद मृत्युलोक में प्रविष्ट होते हैं ॥९॥

**इष्टापूर्तं मन्यमाना वरिष्ठं नान्यच्छ्रेयो वेदयन्ते प्रमूढाः । नाकस्य पृष्ठे ते सुकृतेऽनुभूत्वेमं लोकं ततो हीनतरं वा विशन्ति ॥१०॥**

इष्टापूर्त-यज्ञ कर्म तथा कूप वापी कर्म को श्रेष्ठ मानने वाले प्रमूढ-अति मूर्खजन अन्य परमश्रेय को नहीं जानते हैं अतः वे इष्टापूर्त कर्म संपादक शुभकर्म द्वारा प्राप्त स्वर्ग या उससे ऊपर के लोकों में कर्मफलों का भोगकर इस मनुष्यलोक या इससे भी अति हीन नरकादि लोक में प्रवेश कर जाते हैं ॥१०॥

इष्टञ्च पूर्त्तञ्च इष्टापूर्ते, । पृषोदरादित्वात्पूर्त्तपदस्य दीर्घता । यागादिश्रौतं कर्म इष्टमित्युच्यते । वापीकूप तडागदेवतायतनादिस्मार्तं कर्म पूर्तमित्युच्यते । तदेव

**वरिष्ठं श्रेष्ठं मन्यमाना जानन्तः प्रमूढा अतिशयेनाविवेकिनोऽन्यद् इष्टापूर्तापेक्षया भिन्नं श्रेयः श्रेयःसाधनं परमात्मतत्त्वसाक्षात्काररूपं न वेदयन्ते न जानन्ति ते प्रमूढाः सुकृते सुकृतसाध्येनाकस्य पृष्ठे स्वर्गलोकेऽनुभूत्वा पुण्यफलं दिव्यवनितामृतपानादिसुखमनुभूय पुण्यक्षये जाते सति इमं लोकं मनुष्यलोकं हीनतरं मनुष्यलोकापेक्षया निकृष्टं वा तिर्यग् नरकादिलोकं विशन्ति प्राप्नुवन्ति ॥१०॥**

**'इष्टापूर्तमित्यादि'** इष्ट और पूर्त को इष्टापूर्त कहते हैं। पृषोदरादिक होने से पूर्त पद में दीर्घ हुआ है। यागादिक श्रौत कर्म को इष्ट कहते हैं। और वापी कूप तडाग और देवायतनादिक को पूर्त कहते हैं। यही इष्टापूर्त सर्वतः वरिष्ठ श्रेष्ठ है ऐसा मानने वाले अत्यन्त-अविवेकी पुरुष इससे अन्य कोई श्रेयस का साधन परमात्म श्रीराम साक्षात्कार को नहीं जानते हैं। वे अविवेकी लोग सुकृत पुण्य साध्य नाक के पृष्ठ में अर्थात् स्वर्गलोक में पुण्य का फल दिव्य वनिता अमृतपानादिक का अनुभव करके पुण्य के समाप्त हो जाने पर इस मनुष्यलोक में अथवा इससे भी हीनतर मनुष्य लोकापेक्षया अति निकृष्ट तिर्यग् नरकादि लोक को प्राप्त करते हैं ॥१०॥

**तपःश्रद्धे ये ह्युपवसन्त्यरण्ये शान्ता विद्वांसो भैक्षचर्यां चरन्तः। सूर्यद्वारेण ते**

**विरजाः प्रयान्ति यत्रामृतः स पुरुषो ह्यव्ययात्मा ॥११॥**

जो श्रवण तथा मनन कारी शान्त परब्रह्मोपासक विद्वान् भिक्षाचर्या करते हुये अरण्य में रहकर तप एवं श्रद्धा से परब्रह्म श्रीरामजी की आराधना करते हुये उपवास या सेवन करते हैं वे पाप वासना से शून्य साधक सूर्य मण्डल को भेदकर उस धाम में जाते हैं जहां सभी हेय तत्वों से रहित कल्याणगुणों का सागर अमृत नित्य अविनाशी पुरुष परब्रह्म सर्वेश्वर श्रीरामजी विराजमान हैं ॥११॥

एतावद् ग्रन्थेन कर्मफलस्य स्वर्गादेरनित्यतां प्रदर्श्य परमपुरुषसाक्षात्कारस्य ज्ञानानुगुणवर्णाश्रमविहितकर्मानुष्ठानसहितस्यानन्तस्थिरफलवत्वं प्रदर्शयत्यनेन मन्त्रेण-तप इत्यादिना । तपः स्ववर्णाश्रमोचितं कर्म । श्रद्धा चात्र परमात्मज्ञानं विद्याऽपरपर्यायं तपश्च श्रद्धा च तपःश्रद्धे इमे द्वे अपि अङ्गाङ्गिभावेन ये उपवसन्ति सेवन्ते । कीदृशाः सन्त इत्यत्राह-अरण्ये वर्तमाना इति शेषः । वने वर्तमानाः । उपलक्षणमेतदेकान्तस्थानमात्रस्य यत्र न विघ्नसंभवस्तादृशस्य । शान्ता बाह्यान्तरोभयकरणव्यापारनिवृत्तिविशिष्टा रागरहिता इत्येतत् । विद्वांसः परमात्मतत्वयाथाम्यवेत्तारः । भैक्षचर्यां चरन्तो भिक्षामटमानाः । उपलक्षणमेतद् विधिवशात् प्राप्तेन शरीरधारणस्य । शरीरधारणं भगवदिच्छया संप्राप्तेनान्नफलादिना कुर्वन्त इत्यर्थः । ते अङ्गाङ्गिभावेन

कर्मज्ञानञ्चेत्युभयं सेवमानाः । विरजाः विगतं रजो येषां तादृशाः क्षीणपुण्यपापाः सूर्यद्वारेण सूर्यो द्वार भूतो यत्र पथि तेन अर्चिरादिना पथेत्यर्थः । प्रयान्ति गच्छन्ति । कुत्रेत्याकांक्षायामाह-यत्रामृत इति । यत्राप्राकृते देशे साकेतपदप्रसिद्धे स प्रसिद्धः सकल वेदेषु वेदोपबृंहणेषु च परविद्यागम्यतया प्रकृतो वेत्यर्थः । अव्ययात्मा अव्ययोऽविकारी आत्मा आत्म स्वरूपं यस्य सः । आत्मपदमुपलक्षणं गुणस्यापि । तथा च स्वरूपतो गुणतश्च विकाररहितः । अमृतो नित्यविग्रहविशिष्टः । पुरुषो निरुपाधिकपुरुषशब्दा भिलप्याक्षरो भूतयोनिशब्दनिर्दिष्टः श्रीराम आस्ते इति शेषः । हिपदं निश्चयार्थम् । एतेन ज्ञानाङ्गतया कर्मा नुष्ठानेन सह परमपुरुषज्ञानसेवितः साकेतं भगवद्धामा पुनरावृत्तिकरं श्रीरामाधिष्ठितं प्राप्नोतीति निश्चितम् ११

एतावत् पर्यन्त ग्रन्थ से कर्मफल जो स्वर्गादिक है उसमें अनित्यत्व का प्रदर्शन करके परमपुरुष का जो साक्षात्कार है जो कि ज्ञान के अनुगुण वर्णाश्रम विहित कर्मानुष्ठान सहित है वह अनन्त तथा अतिस्थिर फलक है इस बात को अग्रिम मन्त्र से बतलाते हैं-**'तपः श्रद्धेये'** इत्यादि । स्वकीय वर्णाश्रम का शास्त्र प्रतिपादित जो कर्म उसका नाम होता है तप न कि चान्द्रायण कृच्छ्र

चान्द्रायणादिक यहाँ तप से विवक्षित है क्योंकि ऐसा करने पर कफादिक धातुओं की विषमता हो जाने से वह भगवान् के भजन तथा कैङ्कर्य करने से वञ्चित हो जायगा । और भगवान् का भजन ही मुख्य रूपसे साकेत प्राप्ति में प्रयोजक है तो प्रयोजकाभाव से प्रयोज्याभाव की असिद्धि होने से उद्देश्यासिद्धि रूप दोष हो जायगा । श्रद्धा शब्द का अर्थ है परमात्म विषयक ज्ञान जिसका दूसरा नाम है विद्या अर्थात् उपासना । तप तथा श्रद्धा इन दोनों का अंग तथा अंगीभाव से जो उपासक सेवन करता है । वह किस तरह से तप तथा श्रद्धा का सेवन करता है ? इस जिज्ञासा के उत्तर में कहते हैं-'**अरण्ये**' इति । अरण्य में रहकर अर्थात् वन में निवास करता हुआ नतु घर में रह करके । क्योंकि घर में रहने से पारिवारिक विक्षेप की संभावना रहती है जो कि उपासना का विरोधी है । यहाँ अरण्य पद उपलक्षक है एकान्त स्थान मात्र का, जहाँ किसी प्रकार के विघ्न की संभावना न हो तथा-'**शान्ताः**' बाह्यकरण चक्षुरादिक तथा अन्तःकरण मन इन दोनों के व्यापार से रहित हो करके अर्थात् रागादि दोष रहित हो करके । तथा-'**विद्वांसः**' इति । परमात्म तत्व के वेत्ता । '**भैक्षचर्यां चरन्तः**' भिक्षावृत्ति से जीवन यात्रा का

निर्वाह करनेवाला। यह भिक्षाचरण उपलक्षण है भगवान् की कृपा से जिसके द्वारा शरीर का धारण हो सके। अर्थात् भगवान् की इच्छा से प्राप्त अन्न फलादि के द्वारा शरीर धारण करता हुआ। **'ते'** इति। वे अंगांगीभाव से कर्म तथा ज्ञान का सेवन करनेवाले-**'विरजाः'** पुण्य पापरूप रजस रहित एतादृश उपासक सूर्यद्वार से अर्थात् सूर्य है द्वारभूत जिस मार्ग में अर्थात् अर्चिरादि मार्ग से जाते हैं। कहाँ जाते हैं ? इस जिज्ञासा के उत्तर में कहते हैं-**'यत्रामृतः'** इत्यादि। यत्र-जिस अप्राकृत प्रकृत्यनपेक्ष देश जो कि साकेत पद से लोकत्रय में सकल वेदों से तथा वेदार्थ निरूपण पदकों में प्रसिद्ध है और परविद्या से जानने के योग्य है और प्रकरणान्तर्गत है। **अव्ययात्मा** अव्यय विकार रहित आत्मा स्वरूप है जिनका एतादृश यहाँ आत्मा पद जो है वह भगवान् के गुणों का संग्राहक है। तब यह अर्थ होता है कि स्वरूप से तथा गुणों से जो विकार रहित है। जो अमृत अर्थात् नित्यविग्रह विशिष्ट है। पुरुष अर्थात् निरूपाधिक पुरुष पदवाच्य भूतयोनि शब्द से निर्दिश्यमान भगवान् श्री रामजी जिस देश में विद्यमान हैं। मन्त्रघटक-**'हि'** शब्द निश्चयार्थक है। एतावता ज्ञान के अंगस्वरूप जो कर्मानुष्ठान उसके साथ परमपुरुष विषयक ज्ञान से सेवित

साकेत का जो कि भगवान् श्रीरामजी का धाम है जो सर्वेश्वर श्रीरामजी से अधिष्ठित है उस स्थान को उपासक प्राप्त करता है यह निश्चित है ॥११॥

**परीक्ष्य लोकान् कर्मचितान्ब्राह्मणो निर्वेदमायान्नास्त्यकृतः कृतेन । तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम् ॥१२॥**

कर्मों से सञ्चित लोकों का ठीक से परीक्षा करके जाति एवं क्रम से ब्राह्मण निर्वेद-वैराग्य प्राप्त करले कि कृत कर्मों से अकृत परमात्मा प्राप्त नहीं हो सकता है अतः परतत्त्व श्रीरामजी को जानने हेतु हाथ में समिधा या उपायन लेकर श्रोत्रिय-वेदवेत्ता एवं ब्रह्मनिष्ठ गुरु के पास नम्रतापूर्वक जाय ॥१२॥

परमपुरुषज्ञानाय गुरूपसदनमावश्यकमिति दर्शयति-परीक्ष्येत्यादि यो ब्राह्मणः साङ्गशिरोवेदाध्ययनवान् विप्रः । कर्मचितान् कर्मणा संपादनीयान् स्वर्गादीन् लोकान् परीक्ष्य यथेह कर्मचितो लोकस्तथामुत्र पुण्यचितोलोकः । इति श्रुत्यनुसारेण कर्मणा प्राप्तस्य मनुष्यादि शरीरस्यानित्यत्वं प्रत्यक्षत एवावसितम् । तद् दृष्टान्तेन स्वर्गादिषु देवादिशरीरस्याप्यनित्यत्वामवधार्य पुण्यसम्पाद्यलोकोऽपि कर्मणैव प्राप्यत इति कर्मचितानिति पदेन तस्यापि ग्रहणम् ।

अकृतो नित्योऽनन्तस्थिरफलरूपः परमात्मा कृतेन अनित्येन कर्मणा केवलेन नास्ति ! साध्यः प्राप्यो वा न भवतीति विवेकेन कर्मसाध्ये क्षयिष्णौ स्वर्गादौ निर्वेदं वैराग्यमायाद् गच्छेत् । स स्वर्गादिविषयकनिर्वेदवान् अधिकारी जीवः समित्पाणिः समिधः काष्ठविशेषा होमसाधनभूताः तदुपलक्षिता दर्भादयश्च ते पाणौ यस्य समित्कुशादिपरिपूर्णपाणिः सन्नित्यर्थः । रिक्तपाणिर्न गच्छेत्तु राजानं देवतां गुरुमिति स्मृतेः । तद्विज्ञानार्थं तस्य परमपुरुषस्य विज्ञानाय । परमात्मविज्ञानं लब्धुमित्यर्थः । गुरुमेव गिरति अज्ञानं नाशयति स गुरुः । अज्ञानं निरुध्य ज्ञानप्रदो गुरुरित्युच्यते तमेव । अभिगच्छेदुपसीदेत् । एवकारेण परब्रह्मज्ञानाय गुरूपसदनस्य नियमः सूच्यते । कीदृशं गुरुमित्यत्राह- श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम् । श्रोत्रियं श्रुतवेदान्तार्थम् । ब्रह्मनिष्ठम् ब्रह्मणि निष्ठास्थितिर्यस्य तादृशम् । स्थितप्रज्ञमित्येतत् । ब्रह्मसाक्षात्कारविशिष्टमिति यावत् । ईदृशगुरुद्वारैव परविद्यासंपादनं कुर्यादितिभावः ॥१२॥

परमपुरुष परमात्मा के ज्ञान निमित्त गुरूपसदन अर्थात् गुरु के समीप गमन आवश्यक है इस बात को बतलाने के लिये कहते हैं-'**परीक्ष्यलोकान्**' इत्यादि ।

जो जाति से ब्राह्मण अंग जो व्याकरण छन्द निरुक्त ज्योतिष कल्पादि सहित वेद के अध्ययनवान् विप्र **कर्मचित** अर्थात् यागादि कर्मानुष्ठान द्वारा संपाद्यमान जो स्वर्गादिक लोक भोगप्रद स्थान है उसकी परीक्षा करके अर्थात् जिस तरह कृषि वाणिज्यादि कर्म द्वारा इस लोक में संपादित पदार्थ भोगादि द्वारा क्षीयमाण काल परम्परा से विनष्ट हो जाता है उसी तरह परलोक में यागादि शुभ कर्म द्वारा संप्राप्त जो इन्द्रादिक लोक है वह भोग द्वारा क्रमिक विनष्ट हो जाता है। इस श्रुति के अनुसार कर्म पुण्यापुण्य द्वारा प्राप्त जो मनुष्यादिक शरीर तादृश शरीरादिक का प्रत्यक्ष से अनित्यत्व देखने में आता है। इस दृष्टान्त से स्वर्गादिक परलोक में देवताओं का जो शरीर उसके अनित्यत्व का निर्णय करके पुण्य द्वारा संपादित जो लोक वह भी कर्म द्वारा ही प्राप्त होता है इसलिये-'**कर्मचितान्**' इस पद से उसका भी ग्रहण होता है। **अकृतः** अर्थात् नित्य अनन्त स्थिर फलरूप जो परमात्मा वह **कृत** अर्थात् अनित्य कर्म से केवल कर्म द्वारा प्राप्त नहीं होते हैं अर्थात् केवल कर्म से परमात्मा प्राप्त नहीं होते हैं। इसप्रकार विवेकपूर्वक कर्मसाध्य विनाशी स्वर्गादि के विषय में निर्वेद वैराग्य को प्राप्त करे। तदनन्तर वह अधिकारी जीव **समिध**

अर्थात् यज्ञ के साधनभूत पलाशादि काष्ठ विशेष तथा तादृश काष्ठोपलक्षित कुशकासादि प्रभृति वस्तुओं को हाथ में ले करके क्योंकि स्मृति में कहा है कि-**'रिक्त पार्णिर्न गच्छेत्तु राजानं देवतां गुरुम्'** खाली हाथ से राजा देवता तथा गुरु के पास नहीं जाना चाहिये । एतादृश अधिकारी-**'तद्विज्ञानार्थम्'** उस परमात्मा श्रीराम जी के ज्ञान को प्राप्त करने के लिये अर्थात् परमात्मज्ञान के लाभार्थ गुरु के समीप अज्ञान को जो दूर कर दे उसे गुरु कहते हैं, अज्ञान को विनष्ट करके ज्ञान के दाता को गुरु कहा जाता है । एतादृश गुरु के समीप जाय । **'गुरुमेव'** यहां जो एव शब्द है वह गुरूपसदन में नियमविधि को बतलाता है । किमाकारक विशेषणयुक्त गुरु हो जिसके समीप विज्ञान प्राप्त करने के लिये जाना चाहिये इस जिज्ञासा के उत्तर में श्रुति कहती है- **'श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्'** इति । जिसने वेदान्तार्थ का श्रवण करलिया है उसे श्रोत्रिय कहते हैं । ब्रह्म में निष्ठा वृत्ति है जिसे उसे स्थितप्रज्ञ ब्रह्मनिष्ठ कहते हैं अर्थात् ब्रह्म साक्षात्कार जिसने कर लिया है । एतादृश विशेषण से युक्त गुरु के द्वारा ही परविद्या का संपादन करना चाहिये जिस किसी से नहीं अर्थात् अपण्डित ब्रह्मज्ञान से रहित नाममात्रधारी व्यक्तियों से परविद्या ग्रहण का निषेध

किया गया है ॥१२॥

**तस्मै स विद्वानुपसन्नाय सम्यक् प्रशान्त चित्ताय शमान्विताय । येनाक्षरं पुरुषं वेद सत्यं प्रोवाच तां तत्त्वतो ब्रह्मविद्याम् ॥१३॥**

इति प्रथममुण्डके द्वितीयः खण्डः ॥२॥

वह ब्रह्मनिष्ठ विद्वान् प्रशान्तचित्त वाले इन्द्रियों पर नियन्त्रण करनेवाले अपने पास में आये हुये उस ज्ञान पिपासु के हेतु जिस के ज्ञान से अक्षर-विकार शून्य नाश रहित सत्यस्वरूप परमब्रह्म श्रीरामतत्त्व को जान सके उस वेद प्रसिद्ध ब्रह्मविद्या को तत्त्वतः यथार्थ रूपसे अच्छी प्रकार उपदेश करे ॥१३॥

卐 लघुदीपिकायां द्वितीयखण्डः 卐

सः ब्रह्मनिष्ठो विद्वान् परब्रह्मसाक्षात्कारवान् गुरुः सम्यक् शास्त्रदृष्टविधिना समित्पाणित्वादिना उपसन्नाय स्वसन्निधिं शिष्यभावेन प्राप्ताय । प्रशान्तचित्ताय प्रशान्तं दर्पादिदोषशून्यं चित्तमन्तःकरणं यस्य तादृशाय समवहितचेतस इत्यर्थः । शमः बाह्येन्द्रियनियमनरूपः तेन अन्विताय युक्ताय । उपरतबाह्यकरणग्रामाय तस्मै शिष्याय जिज्ञासावते येन विज्ञानेन अक्षरं स्वरूपतो विकारशून्यं सत्यं गुणतोऽप्यविकृतं पुरुषं निरूपाधिक पुरुषशब्दवाच्यं परमात्मानं श्रीरामं वेद जानीयात् तां ब्रह्मविद्यां परां परमपुरुषप्राप्तिसाधनभूतां विद्यां प्रव